यहाँ प्रकट भये चौदह लोक के नाथ !

प्रश्नकर्ता : *'दादा भगवान' शब्द प्रयोग किसके लिए किया गया है ?*

दादाश्री : *'दादा भगवान' के लिए, मेरे लिए नहीं है। मैं तो ज्ञानी पुरुष हूँ। 'दादा भगवान', जो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आपके भीतर भी हैं, पर आप में प्रकट नहीं हुए हैं। आपके भीतर अव्यक्त रूप से रहें हैं और हमारे भीतर व्यक्त हुए हैं, वे फल प्रदान करें ऐसे हैं।*

ISBN 978-81-89933-11-1

दादा भगवान ?

दादा भगवान ?

(परम पूजनीय दादाश्री का जीवनचरित्र - संक्षिप्त में)

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजित सी. पटेल
महाविदेह फाउन्डेशन
दादा दर्शन, 5, ममतापार्क सोसायटी,
नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद - ३८००१४, गुजरात
फोन - (०७९) २७५४०४०८, २७५४३९७९
E-Mail : info@dadabhagwan.org

© All Rights reserved - Dr. Niruben Amin
Trimandir, Simandhar City,
Ahmedabad-Kalol Highway, Post - Adalaj,
Dist.-Gandhinagar-382421, Gujarat, India.

प्रथम संस्करण : प्रत २०००, सितम्बर २००७

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!
द्रव्य मूल्य : १५ रुपये

लेसर कम्पोझ : दादा भगवान फाउन्डेशन, अहमदाबाद

मुद्रक : महाविदेह फाउन्डेशन (प्रिंटिंग डिवीज़न),
पार्श्वनाथ चैम्बर्स, नई रिज़र्व बैंक के पास,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८० ०१४.
फोन : (०७९) २७५४२९६४, ३०००४८२३

त्रिमंत्र

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लींक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। पीछे अनुगामी चाहिए कि नहीं चाहिए? पीछे लोगों को मार्ग तो चाहिए न?''

– दादाश्री

परम पूजनीय दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूजनीय डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी।

दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् जारी रहेगा। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हजारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शक के रुप में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान पाना जरूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति आज भी जारी है, इसके लिए प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी को मिलकर आत्मज्ञान की प्राप्ति करे तभी संभव है। प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है।

निवेदन

ज्ञानीपुरुष श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से आत्मतत्त्व के बारे में जो वाणी निकली, उसको रिकार्ड करके संकलन तथा संपादन करके ग्रंथो में प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में परम पूजनीय दादा भगवान के स्वमुख से नीकली सरस्वती का हिन्दी अनुवाद किया गया है, जिनमें उनके जीवनचरित्र साथ साथ आत्मविज्ञान की बातें है। सुज्ञ वाचक के अध्ययन करते ही उनको जो आत्मसाक्षात्कार हुआ वही आत्मसाक्षात्कार पाने की भूमिका निश्चित बन जाती है, ऐसा अनेकों का अनुभव है।

'अंबालालभाई' को सब 'दादाजी' कहते थे। 'दादाजी' याने पितामह और 'दादा भगवान' तो वे भीतरवाले परमात्मा को कहते थे। शरीर भगवान नहीं हो सकता है, वह तो विनाशी है। भगवान तो अविनाशी है और उसे वे 'दादा भगवान' कहते थे, जो जीवमात्र के भीतर है।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ख्याल रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो। उनकी हिन्दी के बारे में उनके ही शब्द में कहें तो ''हमारी हिन्दी याने गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी का मिक्श्चर है, लेकिन जब 'टी' (चाय) बनेगी, तब अच्छी बनेगी।''

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए हम आप के क्षमाप्रार्थी हैं।

संपादकीय

जून १९५८ की उस शाम का छह बजे के करीब का समय, भीड़ से धमधमाता सूरत का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. ३ के बेन्च पर अंबालाल मूलजीभाई पटेल बैठे थे। सोनगढ-व्यारासे बडौदा जाने के लिए ताप्ती-वेली रेल्वे से उतरकर बडौदा जानेवाली गाडी की प्रतीक्षा में थे, उस समय प्रकृति ने रचा अध्यात्म मार्ग का अद्‌भूत आश्चर्य।

कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए प्रयत्नशील 'दादा भगवान', अंबालाल मूलजीभाई रूपी मंदिर में कुदरत के क्रमानुसार अक्रम स्वरूप में पूर्ण रूप से प्रकट हो गये। एक घंटे में विश्वदर्शन प्राप्त हुआ! जगत् के तमाम आध्यात्मिक प्रश्नों के उत्तर नज़र आये और प्रश्नों की पूर्णाहूति हुई! जगत् क्या है? कैसे चल रहा है? हम कौन? ये सभी कौन ? कर्म क्या है? बंधन क्या है? मुक्ति क्या है? मुक्ति का उपाय क्या है? ऐसे असंख्य प्रश्नों का रहस्य नज़र आया। ऐसे, कुदरत ने संसार के चरणों में एक अजोड़ संपूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसका माध्यम बने श्री ए.एम.पटेल, भादरण गाँव के ज़मींदार, कान्ट्रैक्टर का धंधा करनेवाले, फिर भी परम 'सत्'को ही जानने की, 'सत्'को ही पाने की और बचपन से ही 'सत्' स्वरूप होने की कामना रखनेवाले इस भव्य पात्र में ही 'अक्रम विज्ञान' प्रकट हुआ।

उन्हें जो प्राप्त हुआ वह तो एक आश्चर्य था ही पर उससे भी बड़ा आश्चर्य तो यह था कि उन्होंने जो देखा, जाना और अनुभव किया वैसी ही प्राप्ति अन्यों को करवाने की उनकी समर्थता! खुद अपना आत्म कल्याण करके मुक्ति पानेवाले अनेक होंगे पर अपनी तरह हज़ारों को छुड़ाने का सामर्थ्य तो केवल तीर्थंकरों में या ज्ञानीओं में कोई विरले ज्ञानी में ही होता है! ऐसे विरल ज्ञानी, जिसने इस कलिकाल के अनुरूप 'इन्स्टन्ट' आत्मज्ञान प्राप्ति का अद्‌भूत मार्ग खोल दिया, जो 'अक्रम' के नाम से प्रचलित हुआ। 'अक्रम' माने अहंकार का फुल स्टॉप (पूर्ण विराम) मार्ग और क्रम माने अहंकार का कोमा (अल्पविराम) मार्ग। अक्रम माने जो क्रम से नहीं वह। क्रम माने सीढ़ी चढ़ना और अक्रम माने लिफ्ट में

तुरंत पहुँच जाना। क्रम मुख्य मार्ग है जो नियमित रूप से है। जब कि 'अक्रम' अपवाद मार्ग है, 'डायवर्ज़न' है।

क्रम मार्ग कहाँ तक चलता है? जहाँ तक मन-वचन-काया की एकता होती है, अर्थात् जैसा मन में हो वैसा ही वाणी में हो और वर्तन में हो, जो इस समय असंभव है, क्योंकि क्रम का सेतु बीच में टूट गया है और कुदरत ने मोक्षमार्ग जारी रखने के लिए, अंतिम अवसर के तौर पर यह 'डायवर्ज़न' (मोड़) अक्रम मार्ग संसार को उपलब्ध कराया है। इस अंतिम अवसर से जो लाभान्वित हो गया, समझो 'उस' पार निकल गया।

क्रम मार्ग में पात्र की शुद्धि करते करते, क्रोध-मान-माया-लोभ को शुद्ध करते करते अंततः अहंकार पूर्णतया शुद्ध करना पड़ता है, ताकि उसमें क्रोध-मान-माया-लोभ का परमाणु मात्र नहीं रहे, तब अहंकार पूर्णतया शुद्ध होता है और शुद्धात्मा स्वरूप के साथ अभेदता होती है।

इस समय क्रमिक मार्ग अशक्य हो गया है इसलिए 'अक्रम विज्ञान' के द्वारा मन-वचन-काया की अशुद्धियों को एक ओर रखकर 'डिरेक्ट' (सीधा) अहंकार शुद्ध हो जाए और अपने स्वरूप के साथ अभेद हो जाए ऐसा संभव हुआ है। उसके बाद मन-वचन-काया की अशुद्धियाँ, क्रमशः उदयानुसार आने पर उनकी संपूर्ण शुद्धि 'ज्ञानी' की आज्ञा में रहने पर साहजिक रूप से हो जाती है।

इस दुषमकाल में कठिन कर्मों के बीच रहकर सभी सांसारिक जिम्मेवारियाँ आदर्श रूप में अदा करते करते भी 'मैं शुद्धात्मा हूँ' यह लक्ष्य निरंतर बना रहता है। 'अक्रम विज्ञान' की यह अजीब देन तो देखिए! कभी सुनी नहीं हो, कहीं पढ़ने में नहीं आई हो ऐसी अपूर्व बात, जो एक बार तो मानने में ही नहीं आती, फिर भी आज हक़ीकत बन गई है!

ऐसे अजायब 'अक्रम विज्ञान' को प्रकाशित करनेवाले पात्र की पसंदगी कुदरत ने किन कारणों के आधार पर की होगी, इसका उत्तर तो प्रस्तुत संकलन में अक्रम ज्ञानी के पूर्वाश्रम के प्रसंग और ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् उनकी जागृति की पराकाष्ठा को निर्देश करनेवाले प्रसंगों से अपने आप प्राप्त होता है।

जीवन में कड़ुए-मीठे अवसरों से किसका पाला नहीं पड़ा होगा? लेकिन ज्ञानी उनसे जुदा कैसे रह पाएँ? जीवन की चाँदनी और अमावस का आस्वाद, ज्ञान-अज्ञान दशा में लेते थे, तब उस प्रसंग में ज्ञानी की अपनी अनन्य, अनोख़ी और मौलिक दृष्टि होती है। ऐसे सामान्य अवसरों में अज्ञानी जीवों का हज़ारों बार गुज़रना होता है, पर उनकि न तो कोई अंतर दृष्टि खुलती है और न ही उनके वेदन की सम्यक् दृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। जब कि 'ज्ञानी' तो अज्ञान दशा में भी, अरे, जन्म से ही सम्यक् दृष्टि के धनी होते हैं। प्रत्येक अवसर पर, वीतराग दर्शन के जरिये खुद सम्यक् मार्ग का संशोधन किया करते हैं। अज्ञानी मनुष्य जिनका अनुभव हज़ारों बार कर चुके हैं, ऐसे अवसरों में से 'ज्ञानी' कोई नया ही निष्कर्ष निकालकर ज्ञान की खोज किया करते हैं।

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' (गुणी लोगों के बचपन से ही गुणवान होने के लक्षण दिखने लगते हैं।) इस उक्ति को सार्थक करते हुए उनके बचपन के प्रसंग जैसे कि, जब उनकी माताजी ने वैष्णव संप्रदाय की माला पहनने पर ज़ोर दिया तो वे बोल पड़े 'प्रकाश दिखलाए वही मेरे गुरु। कुगुरु की तुलना में निगुरा ही बेहतर।' ऐसे प्रसंगों के अनुसंधान में किसी व्यक्ति या उस वर्तन को नज़र अँदाज करते हुए, बालदशा में प्रवर्तमान ज्ञानी की अद्भूत विचारधारा, अलौकिक दृष्टि और ज्ञान दशा के परिपेक्ष्य में ही द्रष्टि करके उसका अभ्यास करना बेहतर होगा।

प्रस्तुत संकलन में ज्ञानी पुरुष की अपनी बानी में ही संक्षिप्त रूप से उनके जीवन के प्रसंगो को संकलित किया गया है। इसके पीछे यही अंतर आशय है कि 'प्रकट ज्ञानी पुरुष' की इस अद्भूत दशा से जगत् परिचित हो और उसे समझकर उसकी प्राप्ति करे, यही अभ्यर्थना।

- डॉ. नीरुबहन अमीन के
जय सच्चिदानंद

दादा भगवान?

(१) ज्ञान कैसे और कब हुआ?

अक्रम की यह लब्धि हमें प्राप्त हुई

प्रश्नकर्ता : आपश्री को जो ज्ञान प्राप्त हुआ, वह कैसे प्राप्त हुआ?

दादाश्री : यह हमें प्राप्त हुई लब्धि है।

प्रश्नकर्ता : नैसर्गिक रूप से? यह नैचुरली (कुदरत के क्रम से) प्राप्त हुआ है?

दादाश्री : हाँ, दीस इज बट नेचरल!

प्रश्नकर्ता : आपकी यह जो उपलब्धि है, वह भी सूरत के स्टेशन पर हुई, ऐसी हर एक को नहीं होती, आपको हुई, क्योंकि आपने भी क्रमिक मार्ग पर धीरे-धीरे कुछ किया होगा न?

दादाश्री : बहुत कुछ, सब कुछ क्रमिक मार्ग से ही किया था, पर उदय अक्रम के रूप में आया। क्योंकि केवलज्ञान में अनुत्तीर्ण हुए! परिणाम स्वरूप उदय में यह अक्रम आकर खड़ा रहा!

क्रम-अक्रम का भेद

प्रश्नकर्ता : पहले यह समझना है कि 'अक्रम विज्ञान' क्या है?

दादाश्री : अहंकार का 'फुल स्टॉप' (पूर्ण विराम) उसका नाम

'अक्रम विज्ञान' और अहंकार का 'कोमा' (अल्प विराम) उसका नाम 'क्रमिक विज्ञान'। यह अक्रम विज्ञान आंतरिक विज्ञान कहलाता है, जो खुद को सनातन सुख की ओर ले जाता है। अर्थात् अपना सनातन सुख प्राप्त करवाये, वह आत्म विज्ञान कहलाये। और यह जो टेम्परररी एडजस्टमेन्टवाला सुख दिलाये, वह सारा बाह्य विज्ञान कहलाये। बाह्य विज्ञान अंततः विनाशी और विनाशकारी है और 'यह' (अक्रम विज्ञान) सनातन है और सनातन बनानेवाला है!

ज्ञानाग्नि से पाप भस्म

प्रश्नकर्ता : वह प्रक्रिया क्या है कि जो एक घंटे में मनुष्य को चिंता मुक्त करवा सके ? उसमें कोई चमत्कार है? कोई विधि है ?

दादाश्री : कृष्ण भगवान ने कहा है कि ज्ञानी पुरुष ज्ञानाग्नि से सारे पापों को जलाकर खाक कर दें! उस ज्ञानाग्नि से हम पापों को जलाकर खाक कर देते हैं और फिर वह चिंता मुक्त हो जाता है।

प्रकाश में कहीं कोई फर्क नहीं

प्रश्नकर्ता : क्या आप भगवद् गीता की थ्योरी में मान्यता रखते हैं?

दादाश्री : सभी थ्योरियाँ मान्य रखता हूँ! क्यों नहीं मानूँगा? वह भगवद् गीता की थ्योरि सब एक ही है न! इसमें डिफरन्स (फर्क) नहीं है। हमारी थ्योरि और उसमें डिफरन्स नहीं है। प्रकाश में फर्क नहीं है, पद्धति का फर्क है यह! ज्ञान का प्रकाश तो समान ही है। ये अन्य मार्ग और इस मार्ग का, सनातन मार्ग का जो ज्ञान प्रकाश है वह तो समान ही है पर उसकी पद्धति अलग है। यह अलौकिक पद्धति है, एक घंटे में मनुष्य स्वतंत्र हो जाता है। 'विदिन वन अवर' चिंता रहित हो जाता है।

साधना, सनातन तत्त्व की ही

प्रश्नकर्ता : आपने पहले उपासना या साधना की थी?

दादाश्री : साधना तो तरह तरह की की थी। पर मैं कोई ऐसी साधना

नहीं करता था कि जिस साधना से किसी वस्तु की प्राप्ति हो। क्योंकि मुझे किसी वस्तु की कामना नहीं थी। इसलिए ऐसी साधना करने की आवश्यकता ही नहीं थी। मैं तो साध्य वस्तु की साधना करता था। जो विनाशी नहीं है, ऐसी अविनाशी वस्तु जो है उसके लिए साधना करता था। अन्य साधनाएँ मैं नहीं करता था।

ज्ञान से पहले कोई मंथन?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान से पहले मंथन तो किया होगा न?

दादाश्री : दुनिया की कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है कि जिसके बारे में सोचना बाकी रखा हो! इसलिए यह ज्ञान प्रकट हुआ है। यहाँ आपके मुँह से दो शब्द निकले नहीं कि मुझे आपकी पूरी बात समझ में आ जाएँ। हमारे एक मिनट में पाँच-पाँच हजार रिवॉल्युशन फिरते हैं। कोई भी शास्त्र का सारांश दो मिनट में निकाल लूँ! पुस्तक में सर्वांश नहीं होता। सर्वांश ज्ञानी पुरुष के पास होता है। शास्त्र तो डाइरेक्शन (दिशा निर्देश) करे।

इस अवतार में नहीं मिले कोई गुरु

प्रश्नकर्ता : आपके गुरु कौन?

दादाश्री : गुरु तो यदि इस अवतार में प्रत्यक्ष मिलें हों तो उसे गुरु कह सकते हैं। हमें प्रत्यक्ष कोई नहीं मिला। कई साधु-संतो से भेंट हुई। उनके साथ सत्संग किया था, उनकी सेवा की थी पर गुरु करने योग्य कोई नहीं मिला। हर एक भक्त, जो सारे ज्ञानी हुए है, उनकी रचनाएँ पढ़ी थी पर रूबरू किसी से नहीं मिला था।

अर्थात् ऐसा है न, हम श्रीमद् राजचंद्रजी (गुजरात में हुए ज्ञानीपुरुष) को गुरु नहीं मान सकते, क्योंकि रूबरू मिलने पर गुरु माने जाएँ (श्रीमद् दादाजी को प्रत्यक्ष रूप में नहीं मिले थे)। अलबत्ता उनकी पुस्तकों का आधार बहुत अच्छा रहा। अन्य पुस्तकों का भी आधार था पर राजचंद्रजी की पुस्तकों का आधार अधिक था।

मैं तो श्रीमद् राजचंद्रजी की पुस्तकें पढ़ता था, भगवान महावीर की

पुस्तकें पढ़ता था, कृष्ण भगवान की गीता का पठन करता था, वेदांत के खंडों का भी वाचन किया था, स्वामीनारायण संप्रदाय की पुस्तकें भी पढ़ी थी और मुस्लिमों का साहित्य भी पठन किया था, और वे सभी क्या कहना चाहते हैं, सभी का कहने का मतलब क्या है, हेतु क्या है, यह जान लिया था। सभी का सही है पर अपनी-अपनी कक्षा के अनुसार। अपनी-अपनी डिग्री पर सही है। तीन सौ साठ डिग्री मानी जाए तो कोई पचास डिग्री पर आया है, कोई अस्सी डिग्री पर पहुँचा है, कोई सौ डिग्री पर है, किसी की डेढ़ सौ डिग्री है, सत्य सभी का है, पर किसी के पास भी तीन सौ साठ डिग्री नहीं है। भगवान महावीर की तीन सौ साठ डिग्री थी।

प्रश्नकर्ता : यह अभ्यास आपका कहाँ पर हुआ?

दादाश्री : यह अभ्यास? वह तो कई जन्मों का अभ्यास होगा!

प्रश्नकर्ता : पर शुरू-शुरू में, जन्म होने के पश्चात् किस तरह का था? जन्म लेने के बाद शुरूआत कहाँ से हुई?

दादाश्री : जन्म होने के बाद वैष्णव धर्म में थे, बाद में स्वामीनारायण धर्म में फिरे, अन्य धर्मो में घूमे, शिव धर्म में घूमे, फिर श्रीमद् राजचंद्रजी के आश्रम की मुलाकात ली, फिर महावीर स्वामी की पुस्तकें पढ़ी, यह सब बारी-बारी से पढ़ा! ऐसी हमारी दशा रही थी, साथ-साथ कारोबार भी चलता था।

सिन्सियारिटी तो निरंतर वीतरागों के प्रति ही

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा और कुछ किया था क्या?

दादाश्री : कुछ भी नहीं, पर निरंतर वीतरागों के प्रति सिन्सियारिटी (संनिष्ठा)! कृष्ण भगवान के प्रति सिन्सियारिटी! इस संसार की रुचि नहीं थी। सांसारिक लोभ बिलकुल भी नहीं था। जन्म से ही मुझ में लोभ की प्रकृति ही नहीं थी। अरे! किसी बड़े आदमी का बग़ीचा हो, जिसमें अमरुद हो, अनार हो, मौसंबी हो, ऐसे बड़े-बड़े बगीचों में ये सभी बच्चे घूमने जाते, उस समय फलों की गठरियाँ बाँधकर घर लाते थे पर मैं ऐसा कुछ

नहीं करता था। अर्थात् लोभ प्रकृति ही नहीं थी। मान इतना सारा था कि संसार में मुझसा और कोई नहीं है। मान, बड़ा जबरदस्त मान! और वह तो मुझे किस कदर काटा, यह तो मैं ही जानता हूँ।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानप्राप्ति से पहले आपकी कैसी परिणती थी?

दादाश्री : मुझे सम्यक्त्व होगा ऐसा लगता था। बाकी, सारी पुस्तकों की स्टडी (अभ्यास) का लेखा-जोखा करके यह खोज निकाला कि 'वस्तु क्या है?' यह सब समझ में आ गया था। और तीर्थंकर, वीतराग ही सच्चे पुरुष हैं और वीतरागों का मत सही है, यह ठान लिया था। वही अनंत काल का आराधन था। अर्थात् सब कुछ वही था। सारा व्यवहार जैन-वैष्णवों का साथ में था। कुछ मामलों में वैष्णव व्यवहार और कुछ मामलों में जैन व्यवहार था। मैं उबला हुआ पानी सदैव पीया करता था, बीज़नेस पर भी उबाला हुआ पानी ही पीया करता था! आपका भी ऐसा जैन व्यवहार नहीं रहा होगा। पर वह ज्ञान प्राकट्य की वजह नहीं है। उसकी वजह तो अन्य अनेकों एविडन्सों का आ मिलना है। अगर ऐसा नहीं होता तो अक्रम विज्ञान कैसे प्रकट होता?! अक्रम विज्ञान में चौबीसों तीर्थंकरों का सारा विज्ञान सम्मिलित है। चौबीस तीर्थंकरों के अवधिकाल में जो नहीं सीझ पाये, नहीं बुझे, उन सभी को बुझने (गूढ़ बात समझनेवाले) के लिए यह विज्ञान है।

सच्चे दिलवालों को 'सच्चा' मिला

प्रश्नकर्ता : पर आपको अक्रम ज्ञान प्रकट कैसे हुआ? अपने आप साहजिक रूप से या फिर कोई चिंतन किया था?

दादाश्री : अपने आप 'बट नैचुरल'(प्राकृतिक रूप से) हुआ! हमने ऐसा कोई चिंतन नहीं किया था। हमें इतना सारा तो कहाँ से प्राप्त होता? हमें ऐसा लगता था कि अध्यात्म में कुछ प्राप्ति होगी। सच्चे दिलवाले थे। सच्चे दिल से किया था, इसलिए ऐसा कुछ परिणाम आयेगा, कुछ सम्यक्त्व जैसा होगा, ऐसा लगता था! सम्यक्त्व की थोड़ी झलक होगी, उसका उजाला होगा, उसके बजाय यह तो पूर्ण रूप से उजियारा हो गया!

मोक्ष में संसार बाधा रूप नहीं

प्रश्नकर्ता : आपने संन्यास क्यों नहीं लिया?

दादाश्री : संन्यास का तो ऐसा उदय ही नहीं था। इसका मतलब यह नहीं कि संन्यास के प्रति मुझे चिढ़ है पर मुझे ऐसा कोई उदय नज़र नहीं आया था और मेरी यह मान्यता रही है कि मोक्ष के मार्ग पर संसार बाधा रूप नहीं होना चाहिए, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता थी। संसार बाधा रूप नहीं है, अज्ञान बाधा रूप है। हाँ, भगवान को यह त्याग मार्ग का उपदेश करना पड़ता है, वह सामान्य भाव से किया गया है। वह किसी विशेष भाव से नहीं किया है। विशेष भाव तो यह है कि संसार बाधा रूप नहीं है, ऐसा हम गारन्टी के साथ कहते हैं।

ज्ञान प्रागट्य में जगत की पुण्यै

प्रश्नकर्ता : यह अक्रम ज्ञान कितने जन्मों का लेखा-जोखा है?

दादाश्री : अक्रम ज्ञान जो प्रकट हुआ वह तो बहुत जन्मों का लेखा-जोखा, सब मिलाकर अपने आप नैसर्गिक रूप से ही यह प्रकट हो गया है।

प्रश्नकर्ता : यह आपको 'बट नैचुरल' हुआ, मगर कैसे?

दादाश्री : कैसे माने उसके सारे सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स आ मिले, इसलिए प्रकट हो गया। यह तो लोगों को समझाने हेतु मुझे 'बट नैचुरल' कहना पड़ा। बाकी यों तो सारे सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स आ मिलने पर वह प्रकट हो गया।

प्रश्नकर्ता : कौन से एविडन्स आ मिले?

दादाश्री : सभी तरह के एविडन्स आ मिले! सारे जगत का कल्याण होनेवाला होगा, वह समय भी परिपक्व हुआ होगा। होने के लिए कुछ निमित्त तो चाहिए न?

ज्ञान होने के पूर्व की दशा

वह दशा ज्ञानांक्षेपकवंत कहलाये। मतलब आत्मसंबंधी विचारणा की

धारा ही नहीं टूटती। वह धारा मुझे थी, ऐसी दशा थी। हाँ, कई दिनों तक लगातार वही चीज़ चलती रहती, धारा टूटती ही नहीं थी। मैंने शास्त्रों में देखा था कि भैया, यह दशा कौन सी है? तब मेरी समझ में आया कि यह तो ज्ञानांक्षेपकवंत दशा बरतती है!

आपको किसकी आराधना?

प्रश्नकर्ता : लोग दादाजी के दर्शन को आते हैं पर दादाजी किसकी सेवा-पूजा करते हैं? उनके आराध्य देवता कौन हैं?

दादाश्री : भीतर भगवान प्रकट हुए हैं, उनकी पूजा करता हूँ।

'मैं' और 'दादा भगवान' एक नहीं है

प्रश्नकर्ता : फिर आप अपने को भगवान कैसे कहलवाते हैं?

दादाश्री : मैं खुद भगवान नहीं हूँ। दादा भगवान को तो मैं भी नमस्कार करता हूँ। मैं खुद तीन सौ छप्पन डिग्री पर हूँ और दादा भगवान तीन सौ साठ डिग्री पर हैं। इस प्रकार मेरी चार डिग्री कम है, इसलिए मैं दादा भगवान को नमस्कार करता हूँ।

प्रश्नकर्ता : ऐसा किस लिए?

दादाश्री : क्योंकि मुझे अभी चार डिग्री पूरी करनी है। मुझे पूरी तो करनी होगी न? चार डिग्री अधूरी रही, अनुत्तीर्ण हुआ, पर फिर से उत्तीर्ण हुए बगैर छुटकारा है क्या?

प्रश्नकर्ता : आपको भगवान बनने का मोह है?

दादाश्री : भगवान बनना तो मुझे बोझ समान लगता है। मैं तो लघुत्तम पुरुष हूँ। इस संसार में कोई भी मुझ से लघु नहीं, ऐसा लघुत्तम पुरुष हूँ।

प्रश्नकर्ता : यदि भगवान नहीं होना चाहते तो फिर यह चार डिग्री पूरी करने का पुरुषार्थ किस लिए करना?

दादाश्री : वह तो मेरे मोक्ष के हेतु। मुझे भगवान बनकर क्या पाना है? भगवान तो जो भी भगवत् गुण धारण करतें हैं, वे सभी भगवान होंगे। भगवान शब्द विशेषण है। जो भी मनुष्य उसके लिए तैयार होगा, लोग उसे भगवान कहेंगे ही।

यहाँ प्रकट हुए, चौदह लोक के नाथ !

प्रश्नकर्ता : 'दादा भगवान' यह शब्द प्रयोग किसके लिए किया गया है?

दादाश्री : दादा भगवान के लिए, मेरे लिए नहीं है। मैं तो ज्ञानी पुरुष हूँ।

प्रश्नकर्ता : कौन से भगवान?

दादाश्री : दादा भगवान, जो चौदह लोक के नाथ हैं। जो आपके भीतर भी हैं, पर आप में प्रकट नहीं हुए हैं। आपके भीतर अव्यक्त रूप में बसे हैं और 'यहाँ' (हमारे भीतर) व्यक्त हो गये हैं। जो व्यक्त हुए हैं, वे फल दे ऐसे हैं। एक बार भी हमारे बोलने पर काम बन जाएँ ऐसा है। पर यदि उन्हें पहचान कर बोले तो कल्याण हो जायें। यदि सांसारिक चीज़ों को लेकर कोई अड़चन होगी, वह अड़चन भी दूर हो जायेगी। पर उसमें लोभ मत करना। यदि लोभ करने गये तो कोई अंत ही नहीं आनेवाला। दादा भगवान कौन है, यह आपकी समझ में आया?

'दादा भगवान' का स्वरूप क्या?

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान का स्वरूप क्या है?

दादाश्री : दादा भगवान का स्वरूप कौन-सा? भगवान, और कौन-सा? जिसे इस वर्ल्ड (दुनिया) में किसी प्रकार की ममता नहीं है, जिसे अहंकार नहीं है, जिसमें बुद्धि नहीं है, वह दादा स्वरूप!

आत्मज्ञान से ऊपर और केवलज्ञान से नीचे

ज्ञानीपुरुष को केवलज्ञान चार डिग्री कम पर अटका हुआ है और

आत्मज्ञान के ऊपर गया है। आत्मज्ञान से आगे निकल गया और केवलज्ञान के स्टेशन तक नहीं पहुँचा है। इसमें बीचवाले हिस्से के जो ज्ञेय हैं, उनका पता जगत को नहीं होता। हम यह जो बोलते है न, उसमें से एक वाक्य का भी जगत को पता नहीं होता, भान ही नहीं होता। वैसे हमारे बोलने के बाद बुद्धि से उसे समझ में आ जाए, समझ में नहीं आये ऐसा नहीं है। बुद्धि वह प्रकाश है, उस प्रकाश के द्वारा सामनेवाला जो कहता है वह समझ में आ जाए कि बात सही है। पर फिर से उसे याद नहीं आता। सिर्फ ज्ञानीपुरुष का वाक्य ऐसा है कि उसमें वचनबल होने के कारण जरूरत हो तब हाज़िर होगा। जब संकट का समय आये न, तब वह वाक्य हाज़िर हो जाए, उसे वचनबल कहते हैं।

संसार देखा मगर जाना नहीं पूर्ण रूप से

हम केवलज्ञान में अनुत्तीर्ण हुए मनुष्य हैं।

प्रश्नकर्ता : चार अंश माने वे कौन से चार अंश?

दादाश्री : यह जो चारित्रमोह आपको नज़र आता है, इसकी भले ही मुझे मूर्च्छा नहीं हो, फिर भी सामनेवाले को नज़र आता है, इसलिए उतने अंश कम हो जाते हैं और दूसरा, संसार मेरी समझ में अवश्य आया है पर जानने में नहीं आया अब तक। केवलज्ञान माने जानने में भी आना चाहिये, जबकि यह तो समझ में ही आया है।

प्रश्नकर्ता : जो जानने में नहीं आया हो, उसका भेद कैसे किया जाए?

दादाश्री : समझ में आया है, जानने में नहीं आया है। यदि जानने में आया होता तो केवलज्ञान कहलाता। समझने में आया है इसलिए केवलदर्शन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : यह 'जाना नहीं पर समझ में आया है' यह ज़रा समझ में नहीं आया।

दादाश्री : समझ में माने यह जगत क्या है, कैसे उत्पन्न हुआ, मन क्या है, मन के फादर-मदर (माता-पिता) कौन है, यह बुद्धि क्या है, यह चित्त क्या है, अहंकार क्या है, मनुष्य का जन्म क्यों होता है, फलाँ का जन्म कैसे होता है, यह सब कैसे चलता है, कौन चलाता है, भगवान चलाते हैं कि अन्य कोई चलाता है, मैं कौन हूँ, आप कौन हैं, ये सारी बातें हमारी समझ में आ गई हैं और दिव्यचक्षु के द्वारा प्रत्येक जीव में आत्मा नज़र आता हो। अर्थात् सब कुछ समझ में आ गया हो, इसलिए उसे केवलदर्शन कहते हैं।

बोलता है वह है टेपरिकार्ड

दादाश्री : यह कौन बोल रहा है? आपसे कौन बात करता है ?

प्रश्नकर्ता : उस ज्ञान का तो मुझे पता नहीं।

दादाश्री : अर्थात् यह 'मैं' आपसे बात नहीं करता हूँ। 'मैं' तो क्षेत्रज्ञ के तौर पर देखा करता हूँ। 'मैं' अपने क्षेत्र में ही रहता हूँ। यह आपसे जो बात करता है वह तो रिकार्ड बात करता है, कम्पलीट (पूर्ण रूप से) रिकार्ड है। इसलिए इस पर से दूसरा रिकार्ड निकल सकता है और वह भी पूर्ण रूप से मिकेनिकल (यांत्रिक) रिकार्ड है।

अर्थात् यह दिखाई देनेवाले भादरण के पटेल है और यह जो बोल रहा है (मुँह से जो वाणी निकल रही है) वह ऑरिजिनल टेपरिकार्ड है! और भीतर दादा भगवान प्रकट हुए हैं, उनके साथ रहता हूँ एकता से। और कभी बाहर निकलकर अंबालाल के साथ भी एकरूप होता हूँ। दोनों ओर व्यवहार करने देना होगा। अंबालाल के साथ भी आना होगा। इस समय व्यवहार में आया कहलाए यह, अन्यथा भीतर खुद अभेद रहे।

गुरुपूर्णिमा के दिन पूर्णदशा में आत्मचंद्र

हमारे यहाँ ये तीन दिन उत्तम कहलाएँ : नये साल का पहला दिन, जन्मजयंती और गुरुपूर्णिमा। ये तीन दिनों हम दूसरे किसी भी व्यक्ति के साथ कोई व्यवहार नहीं रखते, अर्थात् हम उस समय अपने पूर्ण स्वरूप में एकाकार होते हैं। मैं (ज्ञानी पुरुष) अपने स्वरूप में (दादा भगवान के

साथ) एकाकार रहता हूँ, इसलिए उस दर्शन से फल की प्राप्ति होगी। इसलिए उस पूर्ण स्वरूप के दर्शन करने का माहात्म्य है न!

ग्यारहवाँ आश्चर्य यह अक्रम विज्ञान

भगवान महावीर तक दस आश्चर्य हुए और यह ग्यारहवाँ आश्चर्य है। ज्ञानी पुरुष व्यापारी के रूप में वीतराग हैं, व्यापारी भाव से वीतराग हैं। ऐसे दर्शन हो वह अजूबा कहलाए! देखिए न, यह हमारे कोट और टोपी! ऐसा तो कहीं होता होगा ज्ञानी में? उसे परिग्रह से क्या लेना-देना? जिसे कुछ नहीं चाहिए, फिर भी वे परिग्रह में फँसे हैं! उन्हें कुछ नहीं चाहिए, और हैं अंतिम दशा में! पर लोगों की तकदीर में नहीं होगा, इसलिए यह संसारी भेष में हैं! अर्थात् यदि त्यागी का भेष होता तो लाखों-करोडों लोगों का काम बन जाता! लेकिन इन लोगों के पुण्य इतने कच्चे हैं!

मैंने जो सुख पाया वह सभी पायें

प्रश्नकर्ता : आपको धर्म प्रचार की प्रेरणा किसने दी?

दादाश्री : धर्म प्रचार की यह प्रेरणा सारी कुदरती है। मुझे खुद को जो सुख उत्पन्न हुआ, इसलिए भावना हुई कि इन लोगों को भी ऐसा ही सुख हो। यही प्रेरणा!

लोग मुझसे पूछा करते हैं कि 'आप जगत कल्याण की निश्चित मनोकामना कैसे पूर्ण करेंगे?' आपकी अब उम्र हो गई! सुबह उठते-उठते, चाय पीते-पीते दस तो बज ही जाते हैं। 'अरे भैया, हमें इस स्थूल देह को कुछ करना-धरना नहीं है, सूक्ष्म में हो रहा है सब।' यह स्थूल तो मात्र दिखावा करना है। इनको स्थूल का आधार तो देना ही होगा न?

हृदय भिगोए, ज्ञानी की करुणा

प्रश्नकर्ता : आप वीतरागी का लोकसंपर्क से क्या लेना-देना ?

दादाश्री : वीतराग भाव, और कोई संबंध नहीं है। पर इस समय तो पूर्ण वीतराग है ही नहीं न! आप जिससे पूछ रहे हैं वह इस समय

पूर्ण वीतराग नहीं है! इस समय हम तो खटपटिये वीतराग हैं। खटपटिया माने क्या कि जो हमेशा उसी भावना में रहते है कि कैसे इस जगत् का कल्याण हो। इस कल्याण हेतु खटपट करते रहें (अपनी शक्ति व्यय करते हैं), बाकी वीतराग और जनसंपर्क को कोई लेना-देना ही नहीं है। पूर्ण वीतराग तो केवल दर्शन दिया करें, दूसरा कुछ नहीं करते।

प्रश्नकर्ता : पर वीतराग के द्वारा जो जनसंपर्क किया जा रहा है वह अपने कर्म खपाने के हेतु कर रहे है?

दादाश्री : अपना हिसाब पूरा करने के लिए, दूसरों के लिए नहीं। उन्हें और कोई भावना नहीं। जैसा हमारा कल्याण हुआ ऐसा इन सभी लोगों का कल्याण हो, ऐसी हमारी भावना रहती है। वीतरागों को ऐसा नहीं होता। बिलकुल भावना ही नहीं, पूर्णतया वीतराग! और हमारी तो यह एक तरह की भावना है। इसीलिए बड़े सबेरे उठकर बैठ जाते हैं, आराम से। और सत्संग शुरू कर देते हैं, जो रात के साढ़े ग्यारह बजे तक चलता रहता है। अर्थात् यह हमारी भावना है। क्योंकि हमारे जैसा सुख प्रत्येक को प्राप्त हो! इतने सारे दुःख किसलिए भोगना? दुःख है ही नहीं और बिना वजह दुःख भुगत रहे हैं। यह नासमझी निकल जाए तो दुःख जाए। अब नासमझी कैसे निकले? कहने पर नहीं निकलती, आप दिखायें तब निकले। इसलिए हम तो करके दिखलाते हैं। इसे मूर्त स्वरूप कहते हैं। इसलिए श्रद्धा की मूर्ति कहलाये।

प्रश्नकर्ता : आप्त पुरुष की वाणी, वर्तन और विचार कैसे होते हैं ?

दादाश्री : वह सब मनोहारी होते हैं, मन को हरनेवाले होते हैं, मन प्रसन्न हो जाए। उनका विनय अलग तरह का होता है। वह वाणी अलग तरह की होती है। विदाऊट इगोइज्म (निरहंकारी) वर्तन होता है। बिना इगोइज्म का वर्तन संसार में शायद ही कहीं देखने को मिलता है वर्ना मिलनेवाला ही नहीं!

ज्ञानी किसे कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी की व्याख्या क्या है?

दादाश्री : जहाँ सदैव प्रकाश हो। सब कुछ जानते हो, जानने के लिए कुछ भी शेष नहीं हो। ज्ञानी माने उजाला। उजाला माने किसी प्रकार का अंधेरा ही नहीं होता।

और ज्ञानी वर्ल्ड में कभी-कभार एकाध होते हैं, दो नहीं होते। उनका जोड़ नहीं होता। जोड़ होने पर स्पर्धा होगी। ज्ञानी होना यह नेचरल एडजस्टमेन्ट (कुदरत की समायोजना) है। ज्ञानी, कोई अपने बलबूते पर नहीं हो पाता!

ज्ञानीपुरुष तो मुक्त हुए होते हैं। अजोड़ होते हैं। कोई उनकी स्पर्धा नहीं कर सकता। क्योंकि स्पर्धा करनेवाला ज्ञानी नहीं होता।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अप्रतिबद्ध

वीतरागों ने कहा है, कि जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से निरंतर अप्रतिबद्ध भाव से विचरते हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुष के चरणारविंद की भजना करने पर हल निकलेगा। कोई द्रव्य उन्हें बाँध नहीं सकता, कोई काल उन्हें बाँध नहीं सकता, किसी भाव से वे बँध नहीं पाते और न ही कोई क्षेत्र उन्हें बाँध सकता है। संसार में ये चार चीज़ें ही हैं, जिसे लेकर संसार खड़ा रहा है।

ना राग-द्वेष, न त्यागात्याग

ज्ञानी पुरुष किसका नाम कि जिन्हें त्याग अथवा अत्याग संभव नहीं, सहज भाव से होते हैं। वे राग-द्वेष नहीं करते हैं। उनकी विशेष विलक्षणता क्या होती है कि राग-द्वेष नहीं होता।

दृष्टि हुई निर्दोष, देखा जग निर्दोष

सारे संसार में मुझे कोई दोषित नज़र नहीं आता। मेरी जेब काटनेवाला भी मुझे दोषित नहीं दिखता। उस पर करुणा आयेगी। दया हमारे में नाम मात्र को नहीं होती! मनुष्यों में दया होती है, 'ज्ञानी पुरुष' में दया नहीं होती। वे द्वंद्व से मुक्त हुए होते हैं। हमारी दृष्टि ही निर्दोष हो गई होती है। यानी तत्त्वदृष्टि होती है, अवस्था दृष्टि नहीं होती। सभी में सीधा आत्मा ही नज़र आये।

(२) बाल्यावस्था

माँ से पाया अहिंसा धर्म

एक दिन हमारी मदर (माँ) से पूछा कि, 'घर में खटमल हो गये हैं, आपको नहीं काटते क्या?' उत्तर में मदर कहती है, 'हाँ बेटा, काटते तो हैं पर वे दूसरे की तरह थोड़े ही साथ में टिफीन लेकर आते हैं कि 'हमें कुछ दीजिये, माई-बाप!' वे बेचारे कोई बर्तन लेकर तो नहीं आते, जितना खाना हो उतना खाकर चले जाते हैं। मैंने कहा, 'धन्य हैं माताजी आप! और आपके इस बेटे का भी धन्यभाग हैं!'

हम तो खटमल को भी लहू पीने देते थे कि यहाँ आया है तो अब भोजन करके जा। क्योंकि हमारा यह हॉटेल (शरीर) ऐसा है कि यहाँ किसी को कोई कष्ट नहीं होना चाहिए, यही हमारा व्यवसाय! इसलिए खटमलों को भी भोजन करवाया है। अब यदि उन्हें भोजन नहीं करवाते तो उसके लिए सरकार हमें थोड़े ही कोई दंड देनेवाली थी? हमें तो आत्मा की प्राप्ति करनी थी! सदैव चौविहार, सदैव कंदमूल त्याग, सदैव उबला हुआ पानी, यह सब करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी! और इसी वजह, देखिये, यह प्राकट्य हुआ, सारा 'अक्रम विज्ञान' प्रकट हुआ! जो सारी दुनिया को स्वच्छ बना दे, ऐसा विज्ञान प्रकट हुआ है!

माता के संस्कार ने मार खाना सीखलाया

मेरी माताजी भी ऐसी थीं न! माताजी तो मुझे अच्छा सीखलाती थीं। बचपन में मैं एक लड़के को मार-पीट कर घर आया था। उस लड़के को खून निकाल आया था। माताजी को इसका पता चला, तो मुझसे सवाल करने लगी कि, 'बेटा, यह देख, उसे खून निकला है। ऐसे ही तुझे कोई मारे तो खून निकलने पर मुझे तेरी दवाई करनी होगी कि नहीं? इस समय उस लड़के की माँ को भी उसकी दवाई करनी पड़ती होगी कि नहीं? और वह बेचारा कितना रोता होगा? उसको कितना दु:ख होता होगा? इसलिए (तू आज से तय कर कि) तू मार खाकर आना पर कभी किसी को मार कर नहीं आयेगा। तू मार खाकर आना, मैं तेरी दवाई करूँगी।'

बोलिये, अब ऐसी माँ महावीर बनायेगी कि नहीं बनायेगी? इस प्रकार संस्कार भी माताजी से उच्च प्रकार के मिले हैं।

उसमें घाटा किसका?

मैं बचपन में थोड़ा बहुत रूठा करता था। बहुत रूठना नहीं होता था, कभी-कभी रूठ बैठता था। फिर भी मैंने हिसाब निकाला कि रूठने में केवल घाटा ही होता है, इसलिए फिर तय किया कि कोई हमारे साथ कैसा भी व्यवहार करे फिर भी कभी नहीं रूठना। मैं रूठा जरूर था, पर उस दिन सुबह मिलनेवाला दूध खोया! फिर मैंने सारे दिन में क्या-क्या गँवाया उसका हिसाब लगाया...

माताजी से मेरी क्या शिकायत थी कि मुझे और भाभीजी को, दोनों को आप समान क्यों समझती हैं, माँ? भाभीजी को आधा सेर दूध और मुझे भी आधा सेर दूध? उसे कम दीजिये। मुझे आधा सेर मंजूर था। मुझे ज्यादा की ज़रूरत नहीं थी पर भाभीजी का कम करने को कहा, डेढ़ पाव कीजिये कहा, इस पर माताजी ने क्या कहा? 'तेरी माँ तो यहाँ मौजूद है, उसकी माँ यहाँ नहीं है न! उस बेचारी को बुरा लगेगा। उसे दु:ख होगा। इसलिए समानता ही होनी चाहिए।' फिर भी मेरा समाधान नहीं होता था। माताजी बार-बार समझाती रहती, कई तरह से समझाने का व्यर्थ प्रयत्न किया करती थी! इसलिए एक दिन मैं अड़ गया, मगर उसमें घाटा मेरा ही हुआ। इसलिए फिर तय किया कि अब दोबारा हठी नहीं होना है।

कम उम्र में भी सही समझ

बारह साल का था तब गुरु के पास बंधवायी हुई कंठी टूट गई। तब माताजी ने कहा कि, 'हम यह कंठी फिर से गुरु के पास बँधवाएँ।' इस पर मैंने कहा, 'हमारे पुरखों ने जब इस कुएँ में छलांग लगाई होगी, तब इस कुएँ में पानी होगा, पर मैं आज जब इस कुएँ में झाँकता हूँ तो बड़े-बड़े पत्थर नज़र आते हैं, पानी नज़र नहीं आता और बड़े-बड़े साँप दिखाई देते हैं। मैं इस कुएँ में गिरना नहीं चाहता।' बाप-दादा जिसमें गिरे उस कुएँ में हम भी गिरें ऐसा कहीं लिखकर थोड़े दिया है? देखिए भीतर,

कि पानी है या नहीं, यदि है तो कूद पडिए। वर्ना पानी नहीं हो और गिरकर हमारा सिर तुड़वाने से क्या फायदा?

तब गुरु माने प्रकाश धरनेवाला ऐसा अर्थ मैं समझता था। जो मुझे प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान नहीं देते, प्रत्यक्ष प्रकाश नहीं धरते तो मैं कुछ ठंडा पानी छिड़कवाकर या सिर पर पानी के घड़े उँडेलवाकर कंठी बँधवाना नहीं चाहता। यदि मुझे लगा कि इसे गुरु करने योग्य है तो मैं ठंड़ा पानी तो क्या, हाथ कटवाने को कहेंगे तो हाथ काटने दूँगा। हाथ काट ले तो क्या हुआ, अनंत अवतारों से हाथ लिए ही फिरते है न? और यदि कोई लुटेरा बिना कहे काट डाले तो काटने देते हैं न? तब यहाँ गुरुजी काटे तो क्या नहीं काटने देना? और यदि गुरु ने काटा तो? पर गुरुजी बेचारे काटनेवाले हैं ही नहीं। पर मान लीजिये शायद काटने को कहें, तो हमें ऐसा नहीं करने की कोई वजह है क्या?

इसलिए जब मदर ने कहा कि तुझे 'निगुरा' कहेंगे, तब उन दिनों 'निगुरा' माने क्या इसकी मुझे समझ नहीं थी। मैं मानता था कि यह शब्द उन लोगों का कोई एडजस्टमेन्ट होगा, और 'निगुरा' कहकर फजिहत करते होंगे पर 'बिना गुरु का' ऐसा उसका अर्थ उन दिनों मुझे मालूम नहीं था। इसलिए मैंने कहा कि, लोग मुझे निगुरा कहेंगे, मेरी फज़िहत होगी, इससे ज्यादा और क्या कहनेवाले हैं? मगर बाद में मैं इसका अर्थ समझ गया था।

नहीं चाहिए ऐसा मोक्ष

तेरह साल की उम्र में स्कूल से समय मिलने पर वहाँ संत पुरुष के आश्रम में दर्शन करने जाता था। वहाँ पर उत्तर भारत के एक-दो संतों का निवास था। वे बड़े सात्विक थे, इसलिए मैं तेरह साल की उम्र में उनकी चरण सेवा किया करता था। उस समय वे मुझे कहने लगे कि, 'बच्चा, भगवान तुमकु मोक्ष में ले जायेगा।' मैंने कहा, 'साहिब, ऐसी बात नहीं करें तो मुझे अच्छा लगेगा। ऐसी बात मुझे पसंद नहीं है!' उनके मन में हुआ होगा कि नादान बच्चा है न, इसलिए समझता नहीं है! फिर मुझे

कहा, 'आहिस्ता-आहिस्ता तेरी समझ में आयेगा।' इस पर मैंने कहा, 'ठीक है, साहिब।' पर मुझे तो बड़े-बड़े विचार आने लगे कि भगवान मुझे मोक्ष में ले जाएँ, फिर वहाँ मुझे बिठाया होगा और उनकी पहचानवाला कोई आने पर मुझे कहेंगे, 'चल ऊठ यहाँ से' तब? नहीं चाहिए तेरा ऐसा मोक्ष! उसके बजाय बीवी के साथ प्याज़ के पकौडे खायें और मौज़ उड़ाएँ तो क्या बुराई है उसमें? उसकी तुलना में यह मोक्ष बेहतर है फिर! वहाँ कोई ऊठानेवाला हो और मालिक हो तो ऐसा मोक्ष हमें नहीं चाहिए।

अर्थात् तेरह साल की उम्र में ऐसी स्वतंत्रता जागृत हुई थी की मेरा कोई भी मालिक हो तो ऐसा मोक्ष हमें नहीं चाहिए। और यदि नहीं है तो हमारी यही कामना है कि कोई मालिक नहीं और कोई मुझे अन्डरहैन्ड नहीं चाहिए। अन्डरहैन्ड मुझे पसंद ही नहीं है।

बैठे हो वहाँ से कोई उठाये ऐसा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। जहाँ मालिक नहीं, अन्डरहैन्ड नहीं, ऐसा यह वीतरागों का मोक्ष मैं चाहता हूँ। उन दिनों मालूम नहीं था कि वीतरागों का मोक्ष ऐसा है। पर तब से मेरी समझ में आ गया था कि मालिक नहीं चाहिए। उठ यहाँ से कहे, ऐसा तेरा मोक्ष मैं नहीं चाहता। ऐसा भगवान रहें अपने घर। मुझे क्या काम है तेरा? तू यदि भगवान है तो मैं भी भगवान हूँ! भले ही, तू थोड़ी देर के लिए मुझे तेरे अंकुश में लेने की ताक में हो! आइ डोन्ट वान्ट (मुझे जरूरत नहीं)! ऐसी भूख किस लिए? इन पाँच इन्द्रियों के लालच के खातिर क्या? क्या रखा है इन लालचों में? जानवरों को भी लालच है और हमें भी लालच है, फिर हमारे में और जानवरों में अंतर क्या रहा?

परवशता, आई डोन्ट वान्ट

किसी की नौकरी नहीं करूँगा ऐसा पहले से ही खयाल रहा था। नौकरी करना मुझे बहुत दुःखदायी लगता था। यों ही मौत आ जाए तो बेहतर पर नौकरी में तो बॉस (मालिक) मुझे डाँटे वह बर्दाश्त से बाहर था। 'में नौकरी नहीं करूँगा' यह मेरी बड़ी बीमारी रही और इसी बिमारी ने मेरी रक्षा की। आखिर एक दोस्त ने पूछा, 'बड़े भैया घर से निकाल देगें तब क्या

करोगे?' मैंने कहा, 'पान की दुकान करूँगा।' उसमें भले ही रात दस बजे तक लोगों को पान खिलाकर, फिर ग्यारह बजे घर पर जाकर सोने को मिले। उसमें चाहे तीन रुपये मिले तो तीन में ही गुज़ारा करूँगा और दो मिले तो दो में चलाऊँगा, मुझे सब निबाहना आता है, पर मुझे परतंत्रता बिलकुल पसंद नहीं है। परवशता, आई डोन्ट वान्ट (मुझे नहीं चाहिए)।

अन्डरहैन्ड को हमेशा बचाया

जीवन में मेरा धंधा क्या रहा? मेरे ऊपर जो हो उनके सामने मुकाबला और अन्डरहैन्ड (अधिनता में काम करनेवाले)की रक्षा। यह मेरा नियम था। मुकाबला करना मगर अपने से ऊपरवाले के साथ। संसार सारा किसके वश में रहता है? मालिक (अपने से जो ऊपर हो) के! और अन्डरहैन्ड को डाँटते रहें। पर मैं मालिक के सामने बलवा कर दूँ, इसके कारण मुझे लाभ नहीं हुआ। मुझे ऐसे लाभ की परवा भी नहीं थी। पर अन्डरहैन्ड को अच्छी तरह से संभाला था। जो कोई अन्डरहैन्ड हो उसकी हर तरह से रक्षा करना, यह मेरा सबसे बड़ा उसूल रहा।

प्रश्नकर्ता : आप क्षत्रिय है इसलिए?

दादाश्री : हाँ, क्षत्रिय, यह क्षत्रियों का उसूल, इसलिए राह चलते किसी की लड़ाई होती हो तो जो हारा हो, जिसने मार खाई हो उसके पक्ष में रहता था, यह क्षत्रियता हमारी।

बचपन का शरारती स्वभाव

हमें तो सब नज़र आता है, बचपन की ओर मुड़ने पर बचपन नज़र आये। इसलिए हम वह सारी बात बतायें। पसंद आये ऐसी चीज़ नज़र आने पर हमारा बोलना होता है, वरना हम ऐसा कहाँ याद रखें? हमें अंत तक, बचपन तक का सब नज़र आता रहे। सारे पर्याय नज़र आयें। ऐसा था.. ऐसा था..., फिर ऐसा हुआ, स्कूल में हम घंटी बजने के बाद जाया करते थे, वह सारी बातें हमें दिखती हैं। मास्टरजी मुझे कह नहीं पाते थे, इसलिए चिढ़ते रहते थे।

प्रश्नकर्ता : आप स्कूल में घंटी बजने के बाद क्यों जाते थे?

दादाश्री : ऐसा रौब! मन में ऐसा गरूर। पर वहाँ सीधे नहीं रहे तभी ऐसे टेढ़ापन करके देरी से जाते थे न! सीधा आदमी तो घंटी बजने से पहले जाकर अपनी जगह पर बैठ जाए।

प्रश्नकर्ता : रौब जमाना वह उलटा रास्ता कहलाये क्या?

दादाश्री : वह तो उलटा रास्ता ही कहलाये न! घंटी बजने के बाद हम जायें, जबकि मास्टरजी पहले आ चुके हों! यदि मास्टरजी देर से आये तो लाज़िम है, पर बच्चों को तो घंटी बजने से पहले ही आना चाहिए न? पर ऐसा टेढ़ापन। कहेगा, 'मास्टरजी, अपने मन में क्या समझते हैं?' लीजिये!! अरे! तुझे पढ़ाई करनी है कि लडाई करनी है? तब कहें, 'नहीं, पहले लडाई करनी है।'

प्रश्नकर्ता : तो मास्टरजी आप से कुछ नहीं कह पाते थे क्या?

दादाश्री : कह सकते थे, पर कह नहीं पाते थे। उसे मन में भड़क रहती थी कि बाहर पत्थर मारेगा तो सिर फोड़ देगा।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आप इतने शरारती थे क्या?

दादाश्री : हाँ, शरारती थे। हमारा माल (प्रकृति स्वभाव) ही सारा शरारती! टेढ़ा माल!

प्रश्नकर्ता : और ऐसा होते हुए भी यह 'ज्ञान' प्रकट हो गया यह तो आश्चर्य कहलाये।

दादाश्री : 'ज्ञान' हो गया क्योंकि भीतर कोई मैल नहीं था न! इस अहंकार का ही हर्ज था किन्तु ममत्त्व जरा सा भी नहीं था, लालच नहीं था। इसलिए इस दशा की प्राप्ति हुई। पर यदि कोई मेरा नाम लेता तो उसकी शामत आ जाती थी। इसलिए कुछ लोग पीछे से टिप्पणी किया करते थे कि इसका मिज़ाज बहुत है। तब कुछ ऐसा भी कहते थे, 'अरे, जाने दीजिये न, घमंडी है।' अर्थात् मेरे लिए कौन-कौन से विशेषणों का प्रयोग होता है इसकी मुझे जानकारी रहती थी। पर मुझे ममत्व नहीं था। यह प्रधान गुण था, उसी का प्रताप है यह! और यदि कोई ममत्ववाला सौ गुना सयाना रहा, तब भी संसार में गहराई तक डूबा होता है। हम ममत्व रहित इसलिए वास्तव में आनंद हो गया। यह ममत्व ही संसार है, अहंकार यह संसार नहीं है।

बाद में मैंने भी अनुभव किया कि अब मैं सीधा हो गया हूँ। किसी को मुझे सीधा करने का कष्ट नहीं उठाना पड़े।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आप सीधे कैसे हो गये?

दादाश्री : लोगों ने ऐसे-वैसे शिकंजे में कसकर भी मुझे सीधा कर डाला।

प्रश्नकर्ता : यह तो पिछले अवतारों में शुद्ध होता रहा था न ?

दादाश्री : कितने ही अवतारों से यह सीधे होते आये हैं, तब कहीं जाकर इस अवतार में पूर्ण रूप से सीधा हो पाया।

भाषा सीखने के बजाय भगवान में रूचि

अंग्रेजी के मास्टरजी से मैंने कहा कि आप जो कहना चाहें कह सकते हैं पर मैं आपके यहाँ फँस गया हूँ। पंद्रह साल से पढ़-पढ़ करता हूँ पर अब तक मैट्रिक नहीं हो पाता। गिनती से शुरू करके पंद्रह साल हो गये पर मैट्रिक नहीं हो पाया। इन पंद्रह सालों में तो मैं भगवान खोज़ निकालता। इतने साल व्यर्थ में गँवाये! बिना वजह ए-बी-सी-डी सिखाते हैं। अन्य किसी की भाषा, विदेशीयों की भाषा सीखने के लिए मैट्रिक तक पढ़ना पड़े? यह कैसा पागलपन है? विदेश की भाषा सीखने में यहाँ मनुष्य की आधी जिन्दगी खत्म हो जाए!

लघुत्तम सीखते, पायें भगवान

अनंत अवतारों से वही का वही पढ़ते हैं और फिर आवृत्त हो जाता

है। अज्ञान पढ़ना नहीं पड़ता। अज्ञान तो साहजिक रूप से आ जाए। ज्ञान पढ़ना चाहिए। मेरे आवरण कम थे, इसलिए तेरहवें साल में ज्ञान हो गया था। बचपन में गुजराती स्कूल के मास्टरजी ने मुझसे कहा, 'आप यह लघुत्तम सिखिये।' तब मैंने पूछा, 'लघुत्तम माने आप क्या कहना चाहते हैं? लघुत्तम कैसे होता है?' तब उन्हों ने बताया, 'यह जो रकमें दी गईं हैं, उसमें से छोटी से छोटी रकम, जो अविभाज्य हो, जिसका फिर से भाग नहीं किया जा सके, ऐसी रकम खोज़ निकालनी है।' उस समय मैं छोटा था पर लोगों को कैसे संबोधित करता था? 'ये रकमें अच्छी नहीं है।' मनुष्य के लिए 'रकम' शब्द का प्रयोग करता था। इसलिए मुझे यह बात रास आई। अर्थात् मुझे ऐसा लगा कि इन 'रकमों' के भीतर भी ऐसा ही है न? अर्थात् भगवान सभी में अविभाज्य रूप से विध्यमान है। इसलिए मैंने इस पर से तुरन्त ही भगवान खोज निकाले थे। ये सारे मनुष्य 'रकमें' ही है न! उसमें भगवान अविभाज्य रूप से रहे हुए हैं।

आत्मा के सिवा और कुछ नहीं सीखा

बचपन में मैं साइकिल चलाता था, तब बावन रूपयों में रेले कंपनी की साइकिल मिलती थी। उस समय साइकिल में पंकचर होने पर सभी अपने अपने घर पर रिपेर करते थे। मैं तो उदार था इसलिए एक साइकिलवाले से जाकर कहा कि, 'भैया, इसका पंकचर ठीक कर देना जरा।' इस पर सभी मुझ से कहने लगे कि, 'आप बाहर रिपेयर क्यों करवाते हैं? इसमें करना क्या है?' मैंने उत्तर दिया कि, 'भैया! मैं यहाँ यह सब सीखने नहीं आया हूँ। इस दुनिया में बहुतेरी चीज़ें हैं, उन सभी को सीखने के लिए मैंने जन्म नहीं लिया है। मैं तो आत्मा सीखने आया हूँ और यदि यह सब सीखने बैठूँ तो उस आत्मा के बारे में उतना कच्चापन रह जाए।' इसलिए मैंने सीखा ही नहीं। साइकिल चलानी आती थी पर वह भी कैसी? सीधे सीधे साइकिल सवार होना नहीं आता था, इसलिए पीछे की धुरा पर पैर रखकर सवार होता था! और कुछ आया नहीं और सीखने का प्रयत्न भी नहीं किया। यह तो आवश्यकतानुसार सीख लेता था। और अधिक सीखने की ज़रूरत ही नहीं।

घड़ी हुई दुःखदायी

मेरा किसी और ध्यान ही नहीं था। कुछ नया सीखने का प्रयत्न नहीं किया था। इसे सीखने बैठूँ तो उतनी उसमें (आत्मा सीखने में) कमी रह जाए न? इसलिए नया सीखना नहीं था।

बचपन में एक सेकन्ड हैन्ड घड़ी पंद्रह रुपये में लाया था। उसे पहनकर सिरहाने हाथ रखकर सो गया। परिणाम स्वरूप फिर कान में दर्द होने लगा, इसलिए मैंने मन में सोचा कि, यह तो दुःखदायी हो गई। इसलिए फिर कभी नहीं पहनी।

चाबी भरने में समय नहीं गँवाया

घड़ी की चाबी भरना मेरे लिए मुसीबत थी। हमारे साझीदार बोले कि यह सात दिन की चाबीवाली घड़ी है, इसे ले आये। इसलिए फिर सात दिन की चाबीवाली घड़ी ले आया। पर एक दिन एक पहचानवाले आये, कहने लगे कि, 'घड़ी बड़ी सुंदर है।' इस पर मैंने कह दिया कि, 'ले जाइये आप, मुझे चाबी भरने की मुसीबत है!' इस पर फिर हीराबा लड़ने लगीं, आप तो जो जी में आये वह सब औरों को दे दिया करते हैं, अब बिना घड़ी के मैं वक्त कैसे जानूँगी? उस समय हमारे भानजे पंद्रह साल से घड़ी की चाबी घुमाते रहते हैं। मैंने कभी भी घड़ी की चाबी घुमाई नहीं है! मैं तो कभी केलेन्डर भी नहीं देखता! मुझे केलेन्डर देखकर भी क्या करना है? कौन फाड़ेगा पन्ना उसका? केलेन्डर का पन्ना भी मैंने फाड़ा नहीं है। ऐसी फुरसत, ऐसा वक्त मेरे पास कहाँ है? घड़ी की चाबी यदि घुमाने लगूँ तो मेरी चाबी कब घुमेगी? अर्थात् मैंने किसी वस्तु के लिए समय बिगाड़ा ही नहीं है।

रेडियो माने पागलपन

एक मित्र ने कहा, 'रेडियो लाइए'। मैंने कहा, 'रेडियो? और वह मैं सुनूँगा? फिर मेरे टाईम का क्या होगा?' यह लोगों के पास सुनने पर उक्ता जाता हूँ, तो फिर वह हमारे पास वह कैसे हो सकता है? वह मेडनेस (पागलपन) है सारी!

फोन का ख़लल भी नहीं रखा

मुझ से कहने लगे कि, 'हम फोन लगवायें।' मैंने कहा, 'नहीं, उस बला से कहाँ लिपटें फिर? हम चैन की नींद सो रहें हो और घंटी बजने लगे, ऐसी झंझट क्यों मोल लें? लोग तो शौक की खातिर रखते है कि हमारी शान बढ़ेगी। इसलिए शानवाले, लोगों के लिए लाज़िम हैं। हम ठहरे मामूली आदमी, चैन की नींद सोनेवाले, सारी रात निजी स्वतंत्रता में सोयें। मतलब कि वह टेलिफोन कहाँ रखें? फिर घंटी बजी कि परेशानी शुरू! मैं तो दूसरे ही दिन उठाकर बाहर फेंक दूँगा। जरा-सी घंटी बजी नहीं कि नींद में ख़लल हो जाए। शायद मच्छर-खटमल ख़लल पहुँचाये तो अनिवार्य है पर यह तो ऐच्छिक है, इसे कैसे बर्दाशत करें?

पहले हम मोटरकार रखते थे। तब ड्राईवर आकर कहता, 'साहिब, फलाँ पार्ट टूट गया है।' मुझे तो पार्ट का नाम भी नहीं आता था। फिर मुझे लगा कि यह तो फँसाव है! फँसाव तो वाइफ के साथ हो गया और परिणाम स्वरूप बच्चे हुए। और एक बाज़ार खड़ा करना हो तो कर सकते हैं पर ऐसे फँसानेवाले दो-चार बाज़ारों की क्या आवश्यकता है? ऐसे फिर कितने बाज़ार लिए घुमतें फिरें?

यह तो सारी कॉमनसेन्स की बातें कहलायें। वह ड्राईवर यों ही गाडी में से पेट्रोल निकाल लेगा और आकर बोलेगा, कि 'चाचाजी, पेट्रोल डलवाने का है?' अब चाचाजी क्या जाने कि यह क्या बला है? इसलिए फिर हम मोटरकार नहीं रखते थे।

वहाँ सुख नहीं देखा

प्रश्नकर्ता : दादाजी, हमें यह सब कुछ चाहिए और आपको कुछ नहीं चाहिए इसकी वज़ह क्या है?

दादाश्री : वह तो आप, लोगों से सीखकर कहतें हैं। मैंने लोगों से नहीं सीखा। मैं पहले से ही लोगों से विरुद्ध चलनेवाला आदमी। लोग जिस राह चलते हों, वह रास्ता गोलाकार में आगे से मुड़कर जाता हो, लोग

उस रोड पर घुम-फिरकर जाते हैं। जबकि मैं हिसाब लगाऊँ कि सीधे जाए तो एक मील होगा और घुमकर जाने पर तीन मील होंगे, यदि आधी गोलाई काट दें तो डेढ़ मील का फासला रहेगा, इसलिए मैं बीच में से सीधा निकल जाऊँ। लोगों के कहे अनुसार कहीं चला जाता है क्या? लोकसंज्ञा नाम मात्र को भी नहीं थी। लोगों ने जिसमें सुख समझा, उसमें मुझे सुख नज़र नहीं आया।

रुचि, केवल अच्छे वस्त्रों की ही

केवल एक ही बात का शौक था कि कपड़े फर्स्ट क्लास पहनता हूँ। उसे आदत कहिये या फिर मान के लिए। उसकी वजह से अच्छे वस्त्र पहनने की आदत सी है, और कुछ भी नहीं। घर जैसा भी हो चला लूँगा।

प्रश्नकर्ता : बचपन से ही न?

दादाश्री : हाँ, बचपन से।

प्रश्नकर्ता : स्कूल जाते समय भी अच्छे वस्त्र क्या?

दादाश्री : स्कूल जाते समय या ओर कहीं भी हर जगह वस्त्र अच्छे से अच्छे चाहिए।

अर्थात् बस इतना ही...अकेले वस्त्रों में ही शक्ति का व्यय हुआ है। कपड़े सिलवाते समय फिर दर्ज़ी से कहना पड़ता कि, 'देखना भैया, यह कालर ऐसी चाहिए, ऐसा होना चाहिए, वैसा होना चाहिए।' और किसी चीज़ में शक्ति का व्यय नहीं हुआ। ब्याहने में भी शक्ति खर्च नहीं की थी।

अनुत्तीर्ण हुए मगर योजना अनुसार

मेरे पिताजी और बड़े भैया ने दोनों ने मिलकर गुप्त मंत्रणा की थी कि, हमारे परिवार में एक सूबेदार हो गये है, इसलिए इसे भी मैट्रिक होने पर सूबेदार बनाएँ। यह गुप्त मंत्रणा मैंने सुन ली थी। उनकी सूबेदार बनाने

की इच्छा थी। उनकी वह धारणा मिट्टी में मिल गई। मैंने मन ही मन सोचा कि ये लोग मुझे सूबेदार बनाना चाहते हैं, तो जो सर सूबेदार होगा मेरा, वह मुझे डाँटेगा। इसलिए मुझे सुबेदार नहीं बनना है। क्योंकि बड़ी मुश्किल से यह एक अवतार मिला है, वहाँ फिर डाँटनेवाले आ मिले। तो फिर यह जन्म किस काम का? हमें भोग-विलास की किसी चीज़ की तमन्ना नहीं है और वह आकर डाँट सुनाये यह कैसे बर्दाश्त किया जाए? जिन्हें भोग-विलास की चीज़ें चाहिए, वे भले ही डाँट सुना करें। मुझे तो ऐसी किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। इसलिए मैंने ठान लिया कि पान की दुकान निकालेंगे हम, पर ऐसी डाँट सुनने से दूर रहेंगे। इसलिए मैंने तय किया था कि मैट्रिक में अनुत्तीर्ण ही होना है। इसलिए उस पर ध्यान ही नहीं देता था।

प्रश्नकर्ता : योजनाबद्ध?

दादाश्री : हाँ, योजनाबद्ध। इसलिए फेल हुआ वह भी योजनाबद्ध। मतलब कि नोन मैट्रिक। मैं वह सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स ऐसा बोलूँ, दी वर्ल्ड इज दी पजल इट सेल्फ, धेर आर टु व्यु पोईन्टस... ऐसा सब बोलूँ, इसलिए लोग सवाल करें कि 'दादाजी, आप कहाँ तक पढ़ें हैं?' वे तो ऐसा ही समझे कि दादाजी तो ग्रेज्युएट से आगे गये होंगे! मैंने कहा, 'भैया, इस बात को गुप्त ही रहने दीजिये, इसे खोलने में मज़ा नहीं आयेगा।' इस पर वे आग्रह करने लगे कि, 'बताइये तो सही, पढ़ने में आप कहाँ तक गये थे?' तब मैंने बताया कि, 'मैट्रिक फेल'।

मैट्रिक फेल होने पर बड़े भैया कहने लगे, 'तुझे कुछ नहीं आता।' मैंने कहा, 'ब्रेन (दिमाग) खतम हो गया है।' इस पर उन्हों ने पूछा, 'पहले तो बहुत बढ़िया आता था न?' मैंने कहा, 'जो भी हो मगर ब्रेन जवाब दे गया है।' तब कहे, 'धंधा सँभालेगा क्या?' मैंने कहा, 'धंधे में क्या करूँगा, आप जितना कहेंगे उतना करता जाऊँगा।' परिणाम स्वरूप डेढ़ साल धंधा करने के बाद बड़े भैया कहने लगे कि, 'तू तो फिर से अव्वल नंबर लाया!' धंधे में रुचि पैदा हो गई, पैसा कमाने को मिला।

यह तो सूबेदार होनेवाला था उसके बजाय यह उलटी राह चल निकला। इसलिए भैया तंग आ गये और सोचा कि इसे धंधे में लगा

दीजिये। इस पर मैंने समझा कि अब हमारी ग्रहदशा परिवर्तित हुई। धंधे में तो सब समझ आने लगे, फटाफट सब आ जाए। और हॉटल में जाने को मिले, चाय-पानी चलते रहें, सबकुछ चलता रहे और धंधा भी कान्ट्रैक्ट का, नंगा धंधा!

ब्याहते समय भी मूर्च्छा नहीं

ब्याहते समय नया साफ़ा लगाया था, उस पर सेहरे का बोझ आने पर साफ़ा नीचे उतर आया और उतरते-उतरते आँखो के ऊपर आ गया, घुमकर जब देखा तो हीराबा (धर्मपत्नी) नज़र नहीं आई। जो शादी करने आया हो वह साहजिक रूप से दुल्हन की ओर देखेगा ही न? साजो-सामान नहीं देखता। क्योंकि पहले कन्या दिखाने की परंपरा नहीं थी। इसलिए जब लग्नमंडप में आती, तभी देख पाते। तब मेरे मुहाने पर वह बड़ा सेहरा आ गया। इसलिए देखना बंद हो गया। तब मुझे तुरंत ही विचार आ गया कि 'यह ब्याह तो रहे हैं, पर दो में से किसी एक को रँडापा तो आयेगा ही (यानी किसी एक की मृत्यु होने पर दोनों एक-दूसरे से बिछड ही जायेंगे), दोनों को रँडापा नहीं आनेवाला।' उस वक्त ऐसा विचार आया था मुझे वहाँ पर, यों ही छूकर चला गया। क्योंकि चेहरा नज़र नहीं आया, इसलिए यह विचार आया।

अ...ह...ह...! 'उनको' 'गेस्ट' समझा

मैं उन्नीस साल का था, तब मेरे यहाँ बेटे का जन्म हुआ। इसकी खुशी में सारे फ्रेन्ड सर्कल (मित्रमंडल) को पेड़े खिलाये थे और जब बेटे का देहांत हो गया तब भी पेड़े खिलाये थे। तब सब कहने लगे कि, 'क्या दूसरा आया?' मैंने कहा, 'पहले पेड़े खाइये फिर बताऊँगा कि क्या हुआ।' हाँ, वरना शोक के मारे पेड़े नहीं खाते, इसलिए पहले खुलासा नहीं किया और पेड़े खिलाये। जब सभी ने खा लिए तब बताया कि, 'वह जो मेहमान आये थे न, वे चले गये!' इस पर कहने लगे कि, 'ऐसा कोई करता है क्या? और यह पेड़े खिलवाये आपने हमें!' यह तो हमें वमन करना पडे ऐसी हालत हो गई हमारी!' मैंने कहा, ''ऐसा कुछ करने जैसा नहीं है।

वह मेहमान ही था, गेस्ट ही था। और गेस्ट के आने पर कहते हैं 'आइये, पधारिये' और जाते समय 'पधारना' कहें, और क्या झंझट करनी गेस्ट के साथ?'' इस पर सबने कहा की, 'उसे थोड़े गेस्ट कहते हैं? वह तो आपका बेटा था।' मैंने कहा कि, 'मेरे लिए तो वह गेस्ट ही है।' फिर बेटी के जन्म पर भी यही बात दोहराई गई। सब भूल गये और पेड़े खा लिए। बेटी के देहांत पर भी पेड़े खाये! हमारे लोग कुछ याद थोड़े ही रखनेवाले हैं? इन्हें भूलने में देर कितनी? लोगों को भूलने में देर नहीं लगती। देर लगती है क्या? मूर्छित अवस्था जो ठहरी! मूर्छित अवस्था माने क्या, भूलने में देर ही नहीं लगती।

फिर भी मित्रों ने माना, 'सुपर ह्युमन'

प्रश्नकर्ता : अब आपने यह जो सत्संग शुरू किया वह किस उम्र में? आपने सभी को पेड़े खिलाये उसे सत्संग कहें?

दादाश्री : नहीं, उसे सत्संग नहीं कहते। वह तो मेरा दर्शन है, एक तरह की सूझ है मेरी। सत्संग करीबन १९४२ से शुरू हुआ। बयालीस से माने आज उसे इकतालीस साल हुए (१९८३ में)। मूलतः सत्संग की शुरूआत बयालीस से हुई। आठ में मेरा जन्म, माने मेरी चौंतीस साल की उम्र होगी। वैसे तो बत्तीस साल की उम्र से ही सत्संग शुरू हुआ था मतलब कि पहले लोगों को थोड़े-थोड़े वाक्य मिलते थे सही।

बाईस साल की उम्र में ही मैंने मित्रों से कह दिया था कि, भाईयों आप लोग मेरा कोई कार्य कभी भी मत करना। अहंकार तो चोटी पर ही था, इसलिए कहा कि, 'आप अपना काम देर रात भी मुझ से करवा जाना।' इस पर मित्रों ने आपत्ति जताई कि, 'ऐसा क्यों कहते हैं? हमारी-तुम्हारी करने की क्या ज़रूरत है?'

ऐसा हुआ कि एक आदमी के यहाँ मैं रात बारह बजे गया था। इस पर उस भाई के मन में आया कि कभी इतनी रात गये बारह बजे तो आते नहीं और आज आये है, मतलब कुछ पैसे-वैसे की ज़रुरत होगी? अर्थात् उसने उलटा भाव किया। आपकी समझ में आता है न? मुझे कुछ नहीं

चाहिए था। उसकी दृष्टि में मुझे अंतर नज़र आया। प्रतिदिन की जो दृष्टि थी वह दृष्टि आज बिग़डी नज़र आई। ऐसा मेरी समझ में आने पर घर जाकर मैंने विश्लेषण किया। मुझे महसूस हुआ कि संसार के मनुष्यों की दृष्टि बिगड़ते देर नहीं लगती। इसलिए हमारे साथ जो लोग रहते हैं, उन्हें एक ऐसी निर्भयता प्रदान करें कि फिर किसी भी हालत में उनकी दृष्टि में परिवर्तन नहीं आये। इसलिए मैं ने कह दिया कि, 'आप में से कोई भी मेरा कोई कार्य मत करना कभी। अर्थात् मेरा डर आपके मन में नहीं होना चाहिए कि यह कुछ लेने आये होंगे।' तब कहे, 'ऐसा क्यों?' मैंने उत्तर दिया कि, 'मैं दो हाथवालों के पास से कुछ माँगने के हक में नहीं हूँ। क्योंकि दो हाथवाले खुद ही दुःखी हैं और वे सुख खोजते हैं। मैं उनसे कोई आशा नहीं करता हूँ। पर आप मुझसे आशा रखना क्योंकि आप तो खोजते हैं और आपको रज़ामंदी है। मुझसे आपका कार्य बिना झिझक करवा जाना, पर मेरा कोई कार्य मत करना।' ऐसा बोल दिया और निर्भय बना दिये। इस पर उन लोंगो ने क्या प्रतिभाव दिया कि 'बिना सुपर ह्युमन के कोई ऐसा बोल नहीं सकता।' अर्थात् वे क्या बोले, कि यह सुपर ह्युमन का स्वभाव है, ह्युमन का नेचर नहीं।

निरंतर विचारशील दशा

१९२८ में मैं सिनेमा देखने गया था, वहाँ मन में मुझे यह प्रश्न उठा था कि 'अरे! इस सिनेमा से हमारे संस्कारों की क्या दशा होगी? और इन लोगों की क्या हालत होगी?' फिर दूसरा विचार आया कि, 'क्या इस विचार का कोई हल है हमारे पास ? हमारे पास कोई सत्ता है? हमें कोई सत्ता तो है नहीं, इसलिए यह विचार हमारे किसी काम का नहीं है। यदि सत्ता रही तो विचार काम आता, जो विचार सत्ता से परे हो, उसके पीछे लगे रहना वह तो अहंकार है।' बाद में दूसरा विचार आया कि, 'क्या यही होनेवाला है इस हिन्दुस्तान का?' उन दिनों ज्ञान नहीं हुआ था, ज्ञान तो १९५८ में हुआ। उससे पहले अज्ञान तो था ही न? अज्ञान कोई ले थोड़े ही गया था? ज्ञान नहीं था पर अज्ञान तो था ही पर उस समय अज्ञान में भी यह दिखाई दिया कि, 'जो इतनी जल्दी उलटी बात प्रचार कर सके,

वह सीधी बात का प्रचार उतनी ही जल्दी करेगा।' इसलिए सीधी बात के प्रचार हेतु वे साधन सर्वोत्तम है। यह सब उस समय सोचा था, परंतु १९५८ में ज्ञान प्रकट होने के पश्चात् उसके बारे में जरा-सा भी विचार नहीं आया है।

जीवन में नियम ही यही रहा

अर्थात् बचपन से मैंने यही सीखा था कि, 'भैया, तू मुझे आकर मिला और यदि तुझे कुछ सुख प्राप्त नहीं हुआ तो मेरा तुझ से मिलना बेकार है।' उन मिलनेवालों से ऐसा मैं कहता था। वह चाहे कितना भी नालायक हो, यह मुझे नहीं देखना है पर यदि मैं तुझे मिला और मेरी ओर से सुगंधि नहीं आयी वह कैसे चला लें? यह धूपबत्ती नालायकों को सुगंधि नहीं देती क्या?

प्रश्नकर्ता : सभी को देती है।

दादाश्री : उसी प्रकार यदि मेरी सुगंधि तुझ तक नहीं पहुँचती तो फिर मेरी सुगंधि ही नहीं कहलाये। अर्थात् कुछ लाभ होना ही चाहिए। ऐसा पहले से ही मेरा नियम रहा है।

हमें रात के समय बाहर से आना पड़े तो हमारे जूतों की आवाज़ से कुत्ता जाग नहीं जाए, इसलिए हम पैर दबाकर चलते थे। कुत्तों को भी नींद तो होती है न? उन बेचारों को कहाँ बिछाना नसीब में? तब क्या उन्हें चैन की नींद सोने भी नहीं देना?

प्रश्नकर्ता : दादाजी, यह आपके पैरों में गोखरू कैसे हो गये ?

दादाश्री : वह तो हमने आत्मा प्राप्त करने हेतु तप किया था उसका परिणाम है। वह तप कैसा कि जूते में कील ऊपर आ जाए तो उसे ठोकना नहीं, यों ही चलाते रहना। बाद में हमें मालूम पड़ा कि यह तो हम उलटी राह चल रहे हैं। ऐसा तप हमने किया था। जूते में कील बाहर निकल आये और पैरों में चुभती रहे उस समय यदि आत्मा हिल जाए तो आत्म प्राप्ति

नहीं हुई, ऐसी मेरी मान्यता थी। इसलिए वहाँ तप होने देते थे। पर उस तप का दाग़ आज तक बना हुआ है! गया नहीं। तप का दाग़ सारी जिन्दगी नहीं जाता। यह उलटा मार्ग है, यह हमारी समझ में आ गया था। तप तो भीतरी होना चाहिए।

प्राप्त तप भुगता, अदिठ रूप में

मुंबई से बडौदा कार में आना था, इसलिए बैठते ही कह दिया कि, 'सात घंटे एक ही जगह बैठना होगा, तप आया है।' हम आपके साथ बातें करें, पर भीतर में हम से हमारी बात चलती रहे कि, 'आज आपको तप आया है इसलिए एक अक्षर भी मुँह से मत निकालना।' लोग तो आश्वासन के लिए पूछते रहें कि, दादाजी आपको अनुकूलता है कि नहीं? तब कहते, 'पूरी अनुकूलता है।' पर हम किसी को भी कमिशन नहीं जुटाते, क्योंकि हम भुगतें। एक अक्षर भी मुँह से निकाले वह दादाजी नहीं। इसे कहते हैं, प्राप्त तप भुगतना।

प्रतीक्षा करने के बजाय

जब बाईस साल का था तब एक दिन एक जगह केवल एक ही मिनट के लिए बस चूक गया। हालोल रोड पर एक गाँव पड़ता है, वहाँ था और बस आकर निकल गई। वैसे तो मैं आया था एक घंटे पहले पर हॉटेल से बाहर आने में एक मिनट की देरी हुई और बस निकल गई। अर्थात् वह विषाद की घड़ी कहलाये। अगर समय पर नहीं आते और बस निकल गई होती तो हम समझते कि चलिए, 'लेट' हो गये। उस हालात में इतना विषाद नहीं होता। यह तो समय से पहले आये और बस नहीं पकड़ पाये! अब दूसरी बस डेढ़ घंटे के बाद ही मिलती थी।

अब वहाँ डेढ़ घंटा जो प्रतीक्षा करनी पड़ी न, वहाँ मेरी क्या स्थिति हुई? माने भीतर मशीन चलने लगी! अब ऐसे वक्त में कितनी झंझट पैदा होती है? मज़दूर को पचास झंझट होती है और मुझे लाख होवे! कहीं जरा-सा भी चैन नहीं आये, न तो खड़े रहना भाये कि न तो कोई 'आइये,

बैठिये' कहकर बैठने को गद्दी दे वह सुहाये। अब डेढ़ घंटा तो मानो बीस घंटे समान लगे। इसलिए मैंने मन में कहा कि, सबसे बड़ी मूर्खता यदि कोई है तो वह प्रतीक्षा करना है। किसी मनुष्य के लिए या किसी वस्तु के लिए प्रतीक्षा करना उसके समान फुलिशनेस (मूर्खता) और कोई नहीं इस दुनिया में! इसलिए तब से, बाईस साल की उम्र से प्रतीक्षा करना बंद कर दिया। और जब प्रतीक्षा करने का अवसर आ पड़े तब उस घड़ी और कोई काम सौंप दिया करता, प्रतीक्षा तो करनी ही पड़ती है, उसका तो कोई चारा नहीं है न! पर इसकी तुलना में हमने सोचा यह प्रतीक्षा करने का समय बड़ा सुंदर है। वरना खाली इधर-उधर झाँकते फिरें कि बस आई कि नहीं आई! इसलिए ऐसे समय पर हमने और प्रबंध कर दिया ताकि भीतर हमें आराम रहे। कोई प्रबंध तो किया जाएँ कि नहीं किया जाएँ हमसे?

प्रश्नकर्ता : किया जाएँ।

दादाश्री : काम तो अनेकों होते हैं न?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मन को काम पर लगा देते?

दादाश्री : हाँ, मन को काम पर लगा देना।

प्रश्नकर्ता : किस काम में लगाते?

दादाश्री : किसी प्रकार का प्रबंध कर सकते हैं। माने उन दिनों मैं क्या करता था? किसी संत या फिर कृपालुदेव (श्रीमद् राजचंद्र) की कोई लिखाई हो वह मैं बोलता नहीं था, पढ़ा करता था। बोलने पर वह रटाई कहलाये। उसे मैं पढ़ा करता था सारा। आपकी समझ में आती है यह बात?

प्रश्नकर्ता : उसे कैसे पढ़ते थे, दादाजी? बिना पुस्तक के कैसे पढ़ते थे?

दादाश्री : बिना पुस्तक के पढ़ता था। मुझे तो 'हे प्रभु' अक्षर लिखे हुए नज़र आये और मैं पढ़ता रहूँ। वरना मन तो रटेगा और फिर सारे

संकल्प-विकल्प चला करें। और जब केवल रटना ही होगा तो मन हो गया बेकार। 'हे प्रभु, हे प्रभु' बोलते रहे और मन बेकार बेठा फिर बाहर चला गया होता है। इसलिए मैंने एडजस्टमेन्ट लिया था। ताकि जैसा लिखा हो वैसा नज़र आता रहे।

जैसे :- हे प्रभु, हे प्रभु क्या करूँ, दीनानाथ दयाल,
मैं तो दोष अनंत का भाजन हूँ करुणाल!

यह हर शब्द, अक्षरस: मात्रा-बिन्दी के साथ सब नज़र आये। कृपालुदेव ने एक और रास्ता बतलाया था कि उलटे क्रम से पढ़ना। आखिर से लेकर शुरूआत तक आना। तब लोगों को इसकी भी प्रेक्टिस (आदत) हो गई, आदत-सी हो गई। मन का स्वभाव ही ऐसा है आप जिसमें पिरोयेंगे, उसकी आदत हो जायेगी, रट लेगा। और ऐसे पढ़ने में रटना नहीं होता, नज़र आना चाहिए। इसलिए यह हमारी सबसे बड़ी खोज है, पढ़ने की। और फिर हम दूसरों को भी सीखलाते हैं। इन सभी को सीखलाया कि पढ़कर बोलना।

प्रश्नकर्ता : अब दादाजी, बाईसवें साल में भी यह ताक़त थी, क्या?

दादाश्री : हाँ, बाईसवें साल में यह ताक़त थी।

उलझन में खीली अंतर सूझ

यानी मेरी इस उलझन के कारण यह ज्ञान उत्पन्न हुआ। डेढ़ घंटा यदि उलझता नहीं तो....?

प्रश्नकर्ता : एक मिनट भी नहीं चूकते...

दादाश्री : वह एक मिनट के लिए चूकें, उसके फल स्वरूप यह ज्ञान पैदा हुआ। माने ठोकरें खा-खाकर यह ज्ञान उत्पन्न हुआ है, सूझ पैदा हुई है। जब ठोकर लगे तब सूझ पैदा हो जाए। और वह सूझ सदैव मुझे हेल्पिंग (सहायक) रहा करे। अर्थात् फिर मैंने कभी राह नहीं देखी किसी की। बाईसवें साल के पश्चात् मैंने किसी की राह नहीं देखी। गाड़ी आज

साढ़े तीन घंटे 'लेट' है माने हम फिजूल टाईम (समय) व्यतीत नहीं करेंगे और हम उपयोगपूर्वक रहेंगे।

ऐसे प्रबंध किया काउन्टर पुलियों का

अब राह देखना और फिर जबरदस्त 'रिवॉल्युशन'!

इन मजदूरों को प्रति मिनट पचास 'रिवॉल्युशन' (मन की सोचने की गतिशक्ति) होते हैं, जब कि मेरे प्रति मिनट एक लाख रिवॉल्युशन होते हैं। अर्थात् मेरे और मज़दूरों के बीच में अंतर कितना? उनके पचास रिवॉल्युशन होने की वजह से जब आप उनसे कोई बात कहें तो उन्हें समझने में बहुत देर होगी। आप सादी-सी बात, व्यवहार की सीधी-सी बात बतायेंगे तो वह भी उसकी समझ में नहीं आयेगी। इसलिए फिर उसे अलग तरीके से समझायें तब उसके पल्ले पड़ेगी। अब मेरे रिवॉल्युशन अधिक होने की वज़ह से मेरी बात इन ऊँची कौमवालों की समझ में आते भी देर लगती थी। हमारे समझाने पर भी वे समझते नहीं थे। इसलिए मैं क्या कहता था कि, 'यह नालायक है, कमअक्ल है।' इसकी वजह से भीतर में पावर अधिक बढ़ जाता था। 'इतना समझाने पर भी नहीं समझता! कैसा मूर्ख मनुष्य है!' ऐसा कहकर उस पर गुस्सा करता फिरूँ। फिर मेरी समझ में आया कि यह रिवॉल्युशन की वजह से ऐसा होता है, जिसके कारण उसके दिमाग़ में उतरता नहीं है। अब हम सामनेवाले का कसूर बतायें वह हमारा कसूर है। इसलिए फिर मैंने पुलियाँ देना शुरू कर दिया।

क्योंकि यदि पंद्रह सौ रिवॉल्युशन का पंप, तीन हजारवाले इंजन पर चलायेंगे तो पंप टूट जायेगा। इसके लिए फिर पुली देनी पड़ेगी, काउन्टर पुली। इंजन चाहे तीन हजारवाला हो और पंप भले ही पंद्रह सौवाला हो पर बीच में पुलियाँ देनी चाहिए ताकि पंप तक पंद्रह सौ ही पहुँचे। काउन्टर पुली आपकी समझ में आती है? उसी प्रकार मैंने भी फिर लोगों से बात करते समय काउन्टर पुलियाँ देना शुरू कर दिया। फिर मेरा गुस्सा होना बंद हो गया। बात सामनेवाले की समझ में आये, उस प्रकार काउन्टर पुली देनी चाहिए।

(३) अहंकार-मान विरुद्ध जागृति

निवासस्थान का चयन भी विचारपूर्वक

वणिक प्रकृति का माल थोड़ा क्षत्रिय में मिलायें और क्षत्रिय प्रकृति का माल थोड़ा वणिक में मिलायें और फिर जो मिक्चर होगा वह बहुत ठीक होगा। दहीं यदि खट्टा-मीठा रहा तो श्रीखंड मज़ेदार बनेगा। इसलिए हमने पहले से ही क्या किया था? पहले तो हम पटेलों के मुहल्ले में रहते थे। हमारे बड़े भैया का व्यवहार पटेलों के साथ था। पर वह व्यवहार मुझे रास नहीं आता था। मैं छोटा था पर पटेलों के साथ रहना मुझे रास नहीं आता था। क्यों रास नहीं आता था? क्योंकि यों उम्र तो बाईस की थी, पर मुंबई केवल घुमने हेतु जाया करता था और लौटते समय मुंबई का हलवा, जो किफायती दामों पर मिलता था, वह ले आता था। जो हमारी भौजी सब पड़ौसिओं में बाँटती थीं। ऐसे एक-दो बार ले गया था पर एक बार ले जाना भूल गया। इस पर सारे पड़ौसी, जिन से भौजी मिलती, कहते 'इस बार हलवा नहीं लाए क्या?' मुझे लगा कि, 'यह पीड़ा जो नहीं थी कहाँ से मोल ली?' पहले ऐसी पीड़ा नहीं थी। कोई 'नहीं लाए' कहकर अपमानित नहीं करता था। यह लाए, वही हमारी भूल हो गई। एक बार लाए, दूसरी बार लाए और तीसरी बार नहीं लाए कि तमाशा हो गया। 'लीजिये, इस बार नहीं लाए?' अब हम तो फँसे। अर्थात् इन लोगों के साथ व्यवहार करने योग्य नहीं है।

बाकी उन क्षत्रियों का सारा व्यवहार कैसा होता है? वे कहेंगे, यदि जरूरत हो तो हमारा सिर उतार लेना पर आपको हमें देना पड़ेगा। सिर उतारकर लेने-देने की ही तैयारियाँ। इनके सौदे कैसे? बड़े ही होंगे! सट्टे का बहुत बड़ा बिज़नेस, सिर ही काट लेना और उतार देना। इसलिए हमें यह सिर का लेन-देन रास नहीं आया। हमें किसी का सिर नहीं चाहिए और वह तो हमारा सिर माँगने आये। ऐसे सौदो में हमें पड़ना ही नहीं था, इसलिए तय किया कि वणिक के साथ रहा जाएँ।

एक आदमी ने मुझ से पूछा था कि रावण का राज्य क्यों जाता रहा?

तब मैंने उसे पूछा, 'क्यों जाता रहा? मुझे जरा समझाओ न!' इस पर उसने बताया कि, 'यदि सेक्रेटरी-प्रधान के तौर पर एक बनिया रखा होता तो उसे अपना राज्य नहीं गँवाना पड़ता!' मैंने पूछा, 'कैसे नहीं गँवाता? तब उसने कहा कि, नारद ने जब सीता के बारे में बताया कि सीता बहुत ही रूपवती है, ऐसी है, वैसी है, उस समय रावण मन में उकसाया गया कि किसी भी तरह सीता प्राप्त करनी है। उस समय यदि वणिक उसका अमात्य होता तो समझाता कि 'साहब, ज़रा धैर्य धारण कीजिये न, मैंने एक दूसरी सीता से भी बढ़कर स्त्री देखी है।' मतलब रावण को ऐन मौके पर दूर कर देता और एक बार मौका हाथ से निकल गया मानों सौ साल का फासला हो जाए।' ऐसी बात उस आदमी ने मुझे बताई थी। मैंने सोचा कि बात तो सयानेपन की है। मौके का फायदा उठाने के लिए ऐसा कोई चाहिए ही! इसलिए इन वणिकों के साथ, हमारे दोनों ओर पड़ोसी वणिक हैं, उनके साथ इन चालिस सालों से रहता हूँ।

हमने घर में कह दिया था कि हमारे यहाँ कोई कुछ लेने आये तो अवश्य देना, वापस लौटाये तो ले लेना, पर माँगना तो कभी नहीं। एक बार दिया हो, फिर से दोबारा देना पड़े, तीसरी बार देना पड़े, ऐसे सौ बार भले ही देना पड़े पर वापस लौटाने का मत कहना। लौटायें तो ले लेना। इन वणिकों का व्यवहार इतना लाजवाब कि उसके यहाँ हलुए का पूरा क़तला भेजें एकबार और दूसरी बार यदि आधा या चौथाई टुकडा भेजेंगे तब भी कोई शोर-शराबा नहीं करते। और एकाध बार यदि नहीं भेजेंगे तब भी हल्ला-गुल्ला नहीं। उनके साथ हमें रास आयेगा। हमें शोर-शराबेवालों के साथ रास नहीं आता।

उसके बाद मैंने एक वणिक को मुनीम की नौकरी दी थी। एक भाई मुझ से कहने आये कि 'आपको वणिकों से बहुत लगाव है, तो इस वणिक को नौकरी पर रखेंगे क्या?' मैंने कहा, 'आ जाओ, कारखाने पर इतने सारे लोग काम करते हैं और तूँ ठहरा वणिक यह तो बेहतर होगा!' ऐसे सदैव अपने साथ वणिक रखा करता था।

वह सब मान के खातिर ही

रोज़ाना चार-चार गाडियाँ घर के आगे खड़ी हो। मामा का मोहल्ला, संस्कारी मोहल्ला। आज से पैंतालीस साल पहले लोग बंगलों में कम रहते थे। बडौदा में मामा का मोहल्ला सबसे बढ़कर गिना जाता था। उन दिनों हम वहाँ मामा के मोहल्ले में रहा करते थे और किराया पंद्रह रुपये माहवार था। उन दिनों लोग सात रुपये किराये के मकानों में पड़े रहते थे। अब वहाँ मामा के मोहल्ले में वे बंगलों में रहनेवाले मोटरें लेकर हमारे पास आया करते थे। क्योंकि मुसीबतों में फँसे हुए होते थे, इसलिए यहाँ पर आते, उलटा-सीधा करके आते थे, तब भी उनको 'पिछले दरवाजे से' बाहर निकाल देता था (अपनी सूझबूझ से मुसीबत में से निकलने का रास्ता दिखाता था)। पिछला दरवाजा दिखाता था कि इस दरवाजे से निकल जाइये। अब गुनाह उसने किया हो और पिछले दरवाजे से मैं छुडवा देता। अर्थात् गुनाह अपने सिर लिया। किस लिए? उस मान के खातिर। 'पिछले दरवाजे से' भगा देना गुनाह नहीं क्या? वैसे अक्ल लड़ाकर रास्ता दिखाया होवे, इसलिए वे बच निकलते थे। इसलिए वे हमें सम्मान से रखते, पर गुनाह हमारे सिर आता। फिर समझ में आया कि अभानावस्था में यह सारे गुनाह होते हैं, मान के खातिर ही। फिर मान पकड़ में आया। मान की बड़ी चिंता रहती थी।

प्रश्नकर्ता : मान आपकी पकड़ में आया, फिर मान को मारा कैसे?

दादाश्री : मान मरता नहीं है। मान को इस तरह उपशम किया। बाकी, मान मरता नहीं है। क्योंकि मारनेवाला खुद हो तो फिर मारेगा किसे? खुद अपने को कैसे मारेगा? आपकी समझ में आया? इसलिए उपशम किया और ज्यों-त्यों करके दिन गुजारें।

वह अहंकार काटता रहता दिन-रात

हमारी बुद्धि जरा ज्यादा कूद-फाँद किया करती थी और अहंकार की कूद-फाँद भी अधिक थी। मेरे बड़े भैया बहुत अहंकारी थे, वैसे पर्सनालिटीवाले आदमी थे, उनको देखते ही सौ आदमी तो इधर-उधर हो

जाते। केवल आँख की पर्सनालिटी ही ऐसी थी। आँखों और चेहरे का प्रभाव ही ऐसा था!! मैं देखकर ही कहता, 'मुझे तो उनका डर रहता है।' फिर भी वे मुझे क्या कहते कि 'मैंने तेरे जैसा अहंकारी और कोई नहीं देखा!' अरे, मैं तो आपसे भड़कता हूँ। फिर भी अकेले में कहा करते कि, मैंने तेरे जैसा अहंकार और कहीं नहीं देखा! और वास्तव में वह अहंकार बाद में मेरी दृष्टि में आया। वह अहंकार जब मुझे काटता था तब मालूम हुआ कि बड़े भैया जो बताते थे, वह यही अहंकार है सारा! 'मुझे और कुछ नहीं चाहिए था' माने लोभ नाम मात्र को नहीं ऐसा अहंकार! एक बाल बराबर भी लोभ नहीं। अब इसलिए वह मान कैसा होगा? यदि मान और लोभ विभाजित हुए होते तो मान थोड़ा कम हुआ ही होता...

मन से माना हुआ मान

मन में तो ऐसा गुमान कि मानों इस दुनिया में मैं ही हूँ, दूसरा कोई है ही नहीं। देखिये, खुद को ना जाने क्या समझ बैठे थे! मिल्कियत में कुछ नहीं। दस बीघा जमीन और एक मकान, उसके अलावा और कुछ नहीं था। मगर मन में रौब कैसा? मानो चरोतर के राजा हो! क्योंकि आसपास के छह गाँव के लोगों ने हमें बहकाया था। दहेजिया दुल्हा, माँगे उतना दहेज मिले तब दुल्हा ब्याहने पर राजी होवे। उसका दिमाग में खुमार रहा करता था। कुछ पूर्वभव की कमाई लाया था, इसलिए ऐसी खुमारी थी सारी!

उसमें भी मेरे बड़े भैया तो जबरदस्त खुमारी रखते थे। मेरे बड़े भैया को मैं 'मानी' कहा करता था। तब वे मुझे मानी बताते थे। एक दिन मुझे कहने लगे, 'तेरे जैसा मानी मैंने नहीं देखा।' मैंने पूछा, 'कहाँ पर आपको मेरा मान नज़र आया?' तब कहने लगे, 'हर बात को लेकर तेरा मान होता है।'

और उसके बाद खोजने पर प्रत्येक बात में मेरा मान दिखाई दिया और वही मुझे काटता था। मान कैसे पैदा हो गया था? कि सब लोग, 'अंबालालभाई, अंबालालभाई!' कहा करते थे, अंबालाल तो कोई कहता ही नहीं था न! छह अक्षर से पुकारे, इसलिए फिर उसकी आदत सी हो

गई, उसके 'हेबिच्युऐटड' हो गये। अब मान जब इतना भारी होगा तो उसकी रक्षा भी करनी पड़ेगी न! इसलिए फिर यदि कोई भूल से जल्दी में 'अंबालालभाई' नहीं बोल पाये और 'अंबालाल' कहकर पुकारे तो उसमें थोड़े ही उसका गुनाह है? छह अक्षर एक साथ जल्दी में कैसे बोल पाता कोई?

प्रश्नकर्ता : क्या आप ऐसी आशा करते थे?

दादाश्री : अरे, मेरा तो फिर मोल-तौल शुरू हो जाता कि 'इसने मुझे अंबालाल कहा? अपने आपको क्या समझता है? क्या, उससे अंबालालभाई नहीं बोला जाता?' गाँव में दस-बारह बीघा जमीन हो और कुछ रौब जमाने जैसा नहीं पर मन में तो न जाने अपने आपको क्या समझ बैठे थे? 'हम छह गाँववाले, पटेल, दहेजवाले!'

अब सामनेवाला 'अंबालालभाई' नहीं कहता, तब मेरी सारी रात नींद हराम हो जाती, व्याकुलता रहती। लीजिये!! उसमें क्या प्राप्ति होनेवाली थी? उससे मुँह कुछ थोड़े ही मीठा होता है? मनुष्य को कैसा स्वार्थ रहता है? ऐसा स्वार्थ जिसमें कुछ स्वाद भी नहीं आता हो। फिर भी मान लिया था, वह भी लोकसंज्ञा की मान्यता! लोगों ने बड़ा बनाया और लोगों ने बड़प्पन की मान्यता भी दी! मगर ऐसा लोगों का माना हुआ किस काम का?

ये गाय-भैंस हमारी ओर दृष्टि करें और सभी गायें हमें देखती रह जाएं और फिर कान हिलाए तो क्या हम ऐसा समझें कि वे हमारा सम्मान करती हैं, ऐसे?! यह सब उसके समान है। हम हमारे मन से मान लें कि ये लोग सब सम्मान से देख रहें है, मन की मान्यता! वे तो सारे अपने-अपने दु:ख में डूब हुए हैं बेचारे, अपनी-अपनी चिंता में हैं। वे क्या आपके लिए बैठे रहे हैं, बिना किसी काम के? अपनी-अपनी चिंता लिए चक्कर लगा रहे हैं सभी!

पसंदीदा अहंकार दुःखदायी हुआ

उस समय आसपास के लोग क्या कहते? बहुत सुखी मानुष! कॉन्ट्रेक्ट का व्यवसाय, पैसे आते-जाते। लोगों से बहुत प्रेम। लोगों ने भी

प्रेमदृष्टि कबूल की, कि भगवान जैसे मानुष, बहुत सुखी मानुष! लोग कहते सुखी मानुष और मैं चिंता अपार किया करता था।

एक दिन नींद ही नहीं आ रही थी, चिंता मिटती नहीं थी। फिर बैठ गया और एक पुडिया बनाई, जिसमें (मन से) सारी चिंताएँ रखी। ऐसे लपेटा, वैसे लपेटा और ऊपर विधि की और फिर दो तकियों के बीच रखकर सो गया, तब बराबर की नींद आ गई। और फिर सबेरे उठकर उस पुडिया को विश्वामित्री नदी में बहा दी। फिर चिंता कम हो गई। पर जब 'ज्ञान' हुआ तब सारे संसार को देखा और जाना।

प्रश्नकर्ता : पर 'ज्ञान' से पहले भी यह जागृति तो थी न, कि यह अहंकार है, ऐसी?

दादाश्री : हाँ, यह जागृति तो थी। अहंकार है यह भी मालूम होता था, पर वह पसंद था। फिर जब बहुत काटा तब पता चला कि यह हमारा मित्र नहीं हो सकता, यह तो हमारा दुश्मन है, इसमें किसी में मज़ा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह अहंकार कब से दुश्मन लगने लगा?

दादाश्री : रात को नींद नहीं आने देता था, इसलिए समझ गया कि यह किस प्रकार का अहंकार है। इसलिए तो एक रात में पुड़िया बनाकर सुबह जाकर विश्वामित्री में बहा आया! और क्या करता?

प्रश्नकर्ता : माने पुड़िया में क्या रखा?

दादाश्री : सारा अहंकार! ऐसा सब नहीं चाहिए। किसके खातिर यह सब? बिना बजह के, न लेना, न देना! लोग कहें कि 'अपार सुखिया है' और मुझे तो कहीं सुख का छींटा भी नज़र नहीं आता हो, भीतर अहंकार की अपार चिंता-परेशानियाँ होती रहे।

वह अहंकार कब छूटा?

प्रश्नकर्ता : उस अहंकार को छोड़ने का मन कब हुआ? वह पागल अहंकार आपने कब छोड़ दिया?

दादाश्री : वह छोड़ने से छूटता नहीं, अहंकार छूटता है कहीं? वह तो सूरत के स्टेशन पर यह ज्ञान प्रकट हो गया और अपने आप छूट गया। बाकी, छोड़ने से छूटता नहीं है। छोड़नेवाला कौन? अहंकार के राज्य में छोड़नेवाला कौन? जहाँ राजा ही अहंकार हो, उसे कौन छोड़ेगा?

उस दिन से 'मैं' अलग ही स्वरूप में

प्रश्नकर्ता : आपको जो ज्ञान प्राप्त हुआ उस प्रसंग का थोडा-सा वर्णन कीजिये न! उस समय आपके क्या मनोभाव थे?

दादाश्री : मेरे मनोभाव में किसी प्रकार का कोई विशेषभाव नहीं था। मैं तो इस ओर ताप्ति रेलवे लाईन पर सोनगढ-व्यारा नामक जगह है वहाँ मेरा बिज़नेस था, वहाँ से मैं लौटकर सूरत स्टेशन पर आया था। तब एक भाई हमेशा मेरे साथ रहा करते थे। उन दिनों मैं सूर्यनारायण के अस्त होने से पहले भोजन किया करता था, इसलिए ट्रेन में ही भोजन कर लिया था और सूरत के स्टेशन पर छह बजे ट्रेन से उतरे थे। उस समय साथवाले भाई, भोजन के जूठे बर्तन धोने को गये थे और मैं रेल्वे की बेन्च पर अकेला बैठा था। मुझे उस समय यह 'ज्ञान' उत्पन्न हो गया कि जगत क्या है और कैसे चल रहा है, कौन चला रहा है और यह सब कैसे चल रहा है, वह सारा हिसाब नज़र में आ गया। इसलिए उस दिन मेरा इगोइज्म (अहंकार) और सब कुछ खतम हो गया। फिर मैं अलग ही स्वरूप में रहने लगा, विदाऊट इगोइज्म और विदाऊट ममता (बिना अहंकार और बिना ममता के)! पटेल उसी तरह, पहले की तरह ही थे, पर 'मैं' अलग स्वरूप हो गया था! तब से निरंतर समाधि के सिवा, एक सेकिन्ड के लिए भी, और कुछ रहा नहीं है।

सूरत स्टेशन पर क्या नज़र आया?

प्रश्नकर्ता : दादाजी, जब आपको सूरत के स्टेशन पर ज्ञान हुआ, तब कैसा अनुभव हुआ था?

दादाश्री : सारा ब्रह्मांड नज़र आया! यह जगत कैसे चल रहा है, कौन चलाता है, सब नज़र आया। ईश्वर क्या है, मैं कौन हूँ यह कौन है, यह सब किस आधार पर आ मिलता है, यह सब नज़र आया। फिर समझ में आ गया और परमानंद हो गया। फिर सारे रहस्य खुल गए! शास्त्रों में पूर्ण रूप से लिखा नहीं होता। शास्त्रों में तो जहाँ तक शब्द पहुँचते हैं वहाँ तक का लिखा होता है और जगत तो शब्दों से बहुत आगे है।

भीड़ में एकांत और प्रकट भये भगवान

प्रश्नकर्ता : सूरत केस्टेशन पर जो अनुभूति हुई, जो एकदम डाइरेक्ट प्रकाश आया, वह अपने आप अनायास ही हुआ क्या?

दादाश्री : हाँ, अनायास ही, अपने आप ही उत्पन्न हो गया। सूरत के स्टेशन पर एक बेन्च पर बैठा था, बहुत भीड़ थी, पर यह अनायास ही उत्पन्न हो गया!

प्रश्नकर्ता : तत्पश्चात्?

दादाश्री : फिर सब पूर्ण रूप से ही दिखाई दिया, तत्पश्चात् सारा परिवर्तन ही आ गया!

प्रश्नकर्ता : उस समय दुनिया के सारे लोग तो वहीं के वहीं ही होंगे न?

दादाश्री : हाँ, फिर तो मनुष्यों के पेकिंग दिखाई देने लगे और पेकिंग के भीतर का माल भी दिखाई देने लगा। वेराईटीज ऑफ पेकिंग (तरह-तरह के पेकिंग) और माल (आत्मा) एक ही तरह का! अर्थात् उसी क्षण सारा संसार ही भिन्न दिखाई दिया वहाँ पर।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान के पश्चात् व्यवहार का कार्य होता था क्या?

दादाश्री : बेहतरीन होता था। पहले तो अहंकार व्यवहार को कलुषित करता था।

प्रश्नकर्ता : पद में जो 'भीड़ में एकांत और कोलाहल में शुक्ल ध्यान' लिखा है उसका यदि थोड़ा विवरण किया जाए तो?

दादाश्री : 'भीड़ में एकांत' के माने क्या है कि मनुष्य एकांत में एकांत रूप से नहीं रह सकता है, क्योंकि उसका मन है न! इसलिए जहाँ भीड़ हो उसमें एकांत! फिर 'कोलाहल में शुक्ल ध्यान' उत्पन्न हुआ। इर्द-गिर्द इतना कोलाहल कि क्या कहें? लोगों की भीड़ थी और मैं अपने शुक्ल ध्यान में था। अर्थात् सारा संसार पूरा का पूरा मुझे ज्ञान में दिखाई दिया। जैसा है वैसा नज़र आया।

प्रश्नकर्ता : ऐसी अवस्था कितनी देर के लिए रही?

दादाश्री : एक ही घंटा! एक घंटे में तो सब एक्झेक्ट ही हो गया। फिर तो सारा परिवर्तन हुआ, वह नज़र आया। अहंकार तो मूल से ही गायब हो गया। क्रोध-मान-माया-लोभ सारी कमज़ोरियाँ चली गई। मैंने ऐसी तो आशा भी नहीं की थी।

लोग मुझसे सवाल करते हैं कि 'आपको ज्ञान कैसे हुआ?' मैंने पूछा, 'आप नक़ल करना चाहते हैं तो इसकी नक़ल होना दुश्वार है। दिस इज बट नैचुरल (यह सहज प्राकृतिक है)! यदि नक़ल करने योग्य होता तो मैं ही बता देता कि भैया, मैं इस राह गया, इधर गया, उधर गया, इसलिए मुझे यह प्राप्त हुआ। और मैं जिस राह गया था न, उस राह पर इतना बड़ा पुरस्कार मिलना संभव ही नहीं था। मैं तो कुछ साधारण फाइव परसेन्ट (पाँच प्रतिशत) की आशा करता था कि यदि हमारी मेहनत फले तो इसमें से हमें एकाध प्रतिशत भी मिल जाए।'

दिनाँक से नहीं सरोकार

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आपको ज्ञान हुआ उस दिन तारीख कौन सी थी?

दादाश्री : वह साल तो अट्ठावन (१९५८) का था। पर तारीख तो, हमें क्या मालूम कि उसको नोट करने की नौबत आयेगी! और कभी कोई नोट माँगेगा यह भी मालूम नहीं था न! मैंने तो जाना कि अब हमारा हल निकल आया।

प्रश्नकर्ता : उस पर उपयोग देकर खोजना तो पड़ेगा न?

दादाश्री : नहीं, नहीं, वह तो यदि तारीख मिलनी होगी तो अपने आप मिल आयेगी। इस समय हम क्यों झंझट में पड़े?

प्रश्नकर्ता : उस समय बारीश का मौसम था क्या?

दादाश्री : नहीं, वह बारीश और गरमी के बीच का मौसम था।

प्रश्नकर्ता : जुलाई का महीना था क्या?

दादाश्री : वह जुलाई नहीं, जून था। हमें उससे कोई सरोकार ही नहीं था, हमें तो उजियारा हुआ उससे सरोकार था।

प्रश्नकर्ता : लोग पीछे से जानने को बेताब होंगे न?

दादाश्री : बेताब होंगे तब सामने आ भी सकता है! ज़रूरत होगी तब निकल आयेगा।

ऐसे करना प्रतिक्रमण

अरे, उस समय अज्ञान-अवस्था में हमारा अहंकार भारी था! फलाँ ऐसे, फलाँ वैसे, निरा तिरस्कार, तिरस्कार, तिरस्कार, तिरस्कार.... और कभी किसी को सराहते भी सही। एक ओर इसको सराहतें और दूसरी ओर उसका तिरस्कार करते। और जब १९५८ में ज्ञान प्रकट हुआ तब से ए. एम. पटेल को बोल दिया कि जिसके जिसके तिरस्कार किये है, उन आदमीओं को खोज-खोजकर, वे तिरस्कार को साबून डालकर धो डालिये, इसलिए एक-एक को खोजकर सभी बारी बारी से धोते रहें। इस ओर के पड़ोसी, उस ओर के पड़ोसी, सारे परिवारवाले, चाचा, मामा सब के साथ तिरस्कार हुआ होता है, बिना वजह! उन सभी को धो डाला।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मन से प्रतिक्रमण किया, रूबरू जाकर नहीं?

दादाश्री : मैंने ए.एम.पटेल से कहा कि यह आपके किये सारे उलटे काम मुझे नज़र आते हैं। अब तो इन सभी उलटे कियों को धो

डालिये। इसलिए उन्होंने क्या करना शुरू किया? कैसे धोया? मैंने तब उनको समझाया कि याद कीजिये। चंदुभाई को गालियाँ सुनाई है, सारी जिन्दगी भला-बुरा कहा है, तिरस्कृत किया है, यह सब वर्णन करके कहना, 'हे चंदुभाई, मन-वचन-काया का योग, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से भिन्न, प्रकट शुद्धात्मा भगवान! चंदुभाई में स्थित शुद्धात्मा भगवान! मैं बार-बार चंदुभाई की माफ़ी चाहता हूँ, दादा भगवान को साक्षी रखकर माफ़ी माँगता हूँ और फिर से ऐसे दोष नहीं करूँगा।' यदि आप ऐसा करेंगे तब आप सामनेवाले के चेहरे का परिवर्तन देख लीजिये। उसका चेहरा बदला हुआ नज़र आयेगा। आप यहाँ प्रतिक्रमण करें और वहाँ परिवर्तन होता रहे।

इस ज्ञान के प्राकट्य के पश्चात्

यह सारे सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्सीस आ मिलें और सूरत के स्टेशन पर काल आ मिला। उस काल को लेकर यह ज्ञान प्रकट हो गया, कि जगत किस आधार पर चल रहा है, कैसे चल रहा है यह सब, सारा विज्ञान दिखाई पड़ा, बाहर की आँख से नहीं, अंदरूनी आँख से। बस उसी क्षण से सारा अहंकार चला गया। 'मैं देह हूँ' वह सब उड़ गया। पूर्णतया ज्ञानदशा है तत्क्षण से।

अब वहाँ बडौदा में ज्ञानदशा में रहता था। मूल पहलेवाले कर्म की वजह से सारे फ्रेन्ड सर्कल का आना-जाना होता रहता था। पहले की तरह लोगों से, 'आप कैसे हैं? क्या हुआ? क्या नहीं,' यह सब होता रहता था, पर उसमें जो पहले ममता थी वह नहीं रही। पहले मान के पोषण हेतु मैं बोलता था। किसी का कोई कार्य मैंने मुफ्त में नहीं किया है उसकी एवज़ में मेरा मान का पोषण होता रहा है, इतना ही। अर्थात् बिना एवज़ के तो कोई कार्य होता ही नहीं है। पर अब वही कार्य मान की अपेक्षा के बगैर होने लगा।

ज्ञान प्रकट होने के पश्चात् चार साल गुजर गये। वहाँ तक किसी को मालूम नहीं था कि इनको कुछ प्राप्ति हुई है। फिर सारी भीड़ होने लगी (लोग ज्ञानप्राप्ति के लिए आने लगे)।

(४) साझेदारी में व्यवसाय करते...

नौकरी में मिले उतना ही घर खर्च के लिए

हमने बचपन में तय किया था कि जहाँ तक हो सके झूठ की लक्ष्मी घर में घुसने नहीं देनी है और यदि संयोगाधीन घुस जाए तो उसे धंधे में ही रहने देनी, घर में घुसने नहीं देनी है। इसलिए आज हमें छियासठ साल हो गये पर झूठ की लक्ष्मी को घर में घुसने नहीं दिया और घर में कभी भी क्लेश पैदा नहीं हुआ। घर में तय किया था कि इतने पैसों से घर चलाना। धंधे में लाखों की कमाई हो, पर यदि यह ए.एम.पटेल सर्विस (नौकरी) करने जाए तो कितना वेतन मिले? ज्यादा से ज्यादा छहसौ-सातसौ रुपैया मिले। धंधा, तो पुण्याई का खेल है। इसलिए नौकरी में मुझे जितना मिले उतने पैसों का ही घर में खर्च किया जाए, शेष धंधे में ही रहने देना चाहिये। इन्कमटैक्सवालों का खत आये तो हम कहें कि 'वह रकम है उसे भर दीजिये।' कौन सा 'अटैक' कब होगा उसका कोई ठिकाना नहीं है और यदि उन पैसों को खर्च कर दिया तब वहाँ इन्कमटैक्सवालों का 'अटैक' होगा ही, पर साथ-साथ यहाँ दूसरा 'अटैक' (हार्ट का) भी आयेगा! हर जगह 'अटैक' होने लगे हैं न? इसे जीवन कैसे कहें? आपको क्या लगता है? भूल होती लगती है या नहीं? हमें उस भूल को मिटानी है।

लक्ष्मी की न कमी, न भराव

मुझे कभी लक्ष्मी की कमी नहीं पड़ी और भराव भी नहीं हुआ। लाख आने से पहले कहीं न कहीं से बम आ गिरेगा (कुछ ऐसा हो जाए) और खर्च हो जायेंगे। माने भराव तो होता ही नहीं है कभी, और कमी भी नहीं होती है, और कुछ दबाकर भी नहीं रखा है। क्योंकि यदि हमारे पास झूठ का पैसा आये तब दबाना पड़ेगा न? ऐसा गलत धन ही नहीं आता तो दबाएँ कैसे? और ऐसा हमें चाहिए भी नहीं। हमें तो कमी नहीं हो और भराव नहीं होता माने बहुत हो गया।

उगाही करे तब परेशानी आये न !

यह सन बयालीस की बात है, उन दिनों फ्रेन्डसर्कल में रुपयों का लेन-देन चला। उन रुपयों को फिर वापस लौटाने कोई नहीं आया। पहले तो किसीको रुपये देने पर कोई दो सौ-पाँच सौ नहीं लौटा था तब तक ठीक था। मेरे पास था इसलिए मैंने सभी दोस्तों को हेल्प (मदद) की थी, मगर बाद में एक भी लौटाने नहीं आया। इस पर मेरे अंदर से आवाज़ आई कि, 'यह अच्छा हुआ, यदि रुपयों की फिर से उगाही करेंगे तो फिर से उधार माँगने आयेंगे।' उगाही करने पर थोड़े-थोडे करके पाँच हजार लौटाए जरूर मगर फिर से दस हजार लेने आयें। इसलिए यदि लेने आनेवाले को बंद करना हो तो यह रास्ता उत्तम है। हम इतने से ही रोक लगा दें, ताला लगा दें। उगाही करेंगे तो फिर से आयेंगे न! और उन लोगों ने क्या निष्कर्ष निकाला कि, 'उगाही ही नहीं करते, चलिये हमारा काम बन गया।' इसलिए फिर वे मुँह दिखाने से ही बाज़ आये और मुझे यही चाहिए था। मतलब कि 'भला हुआ, मिटा जंजाल, सुख से भजेंगे श्री गोपाल' अर्थात् उस समय यह कला हस्तगत हुई!

हमारा एक पहचानवाला रुपया उधार ले गया था। फिर लौटाने ही नहीं आया। इस पर हमारी समझ में आ गया कि यह बैर से बँधा होगा, इसलिए भले ही ले गया। ऊपर से उससे कह दिया कि, 'तू अब हमें रुपया लौटाने मत आना, तुझे छूट देते हैं।' ऐसे यदि पैसे गँवाना पड़े तो गँवाकर भी बैर से मुक्ति पाइये।

उधार दिया था उसे ही दुबारा दिया! कैसे फँसे?

ऐसा है न कि संसार में लेन-देन तो चलता ही रहता है। कभी किसी से लिए होते हैं, कभी किसी को देना पड़ता है, अर्थात् कभी किसी आदमी को कुछ रुपये उधार दिये और उसने नहीं लौटाए, तो इसके कारण मन को क्लेष तो होगा ही न? मन में होता रहे कि, 'वह कब लौटायेगा? कब वापस करेगा?' इसका कोई अंत है क्या?

हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ था न! पैसे वापस नहीं आने पर उसकी

चिंता तो हम पहले से ही नहीं किया करते थे। यों साधारण रूप से टकोरते, उसे कहते जरूर थे। हमने एक आदमी को पाँच सौ रुपये उधार दिये थे, देने पर बहीखाते में दर्ज तो नहीं किया होता कि न ही कोई कागज़ पर दस्तख़त करवाये होते थे! इसको साल-डेढ़ साल हो गया होगा। मुझे भी कभी याद नहीं आया था। एक दिन वह आदमी मुझे रास्ते में मिल गया, मुझे याद आने पर मैंने उससे कहा कि, 'यदि अब हाथ पर रहते हो तो मेरे पाँच सौ जो उधार लिए थे, उसे लौटा दीजिये।' इस पर उसने पूछा कि 'पाँच सौ काहे के?' मैंने याद दिलाया कि, 'आप जो मुझ से उधार ले गये थे न वे।' यह सुनने पर वह कहने लगा कि, 'आपने मुझे कब दिये थे? रुपये तो मैंने आपको उधार दिये थे, यह आप भूल गये हैं क्या?' इस पर मुझे कोई हैरानी नहीं हुई। कुछ समय रूककर, मैंने कहा कि, 'मुझे जरा सोचने दीजिये।' थोड़ी देर सोचने का दिखावा करके मैंने कहा कि, 'हाँ, याद आया सही, ऐसा कीजिये, आप कल आकर ले जाइये।' फिर दूसरे दिन रुपये दे दिये। वह आदमी यहाँ आकर हमसे उलझने लगे कि आप मेरे रुपये क्यों नहीं लौटाते तो क्या करेंगे हम? ऐसी कई घटना होने के उदाहरण है।

इसलिए इस संसार को कैसे पार कर सकते हैं? हमने किसी को यदि रुपये उधार दिये हो तो वह कपड़े की काली चिंदी में बाँधकर दरिया में डाल देने के बाद वापस मिलने की आशा करने के बराबर है। यदि वापस आ जाए तो जमा कर लेना और देनेवाले को चाय-पानी पिलाकर कहना कि, 'भाईजी, आपका ऋण समझना चाहिए कि आपने रुपया लौटाया वरना ऐसे काल में कोई भी लौटाता नहीं। आपने लौटाया यह अजूबा कहलाये।' वह कहे कि, 'व्याज नहीं मिलेगा।' तब कहना, 'मूल धन लाया इतना ही काफी है।' समझ में आता है? ऐसा संसार है। उधार लिया है उसे लौटाने में कष्ट होता है और उधार देनेवाले को वापस न आने का दुःख है। अब इनमें सुखी कौन? और है व्यवस्थित (सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स)। नहीं लौटाता वह भी व्यवस्थित है और मुझे डबल देने पड़े वह भी व्यवस्थित है।

प्रश्नकर्ता : आपने दूसरे पाँच सौ क्यों दिये?

दादाश्री : दोबारा किसी अवतार में उस आदमी के साथ पाला नहीं पड़े इसलिए। इतनी जागृति रहे न, कि यह तो गलत जगह आ गये।

ठगाये, मगर कषाय न करने हेतु

हमारे साझीदार ने एक बार हमसे कहा कि, 'लोग आपके भोलेपन का लाभ उठाते हैं।' मैंने कहा, 'आप मुझे भोला समझते हैं इसलिए आप ही भोले हैं, मैं तो समझ-बूझ के साथ ठगाता हूँ।' इस पर उसने कहा, 'अब मैं ऐसा नहीं बोलूँगा'। मैं समझूँ कि इस बेचारे की मति ही ऐसी है, उसकी नीयत ऐसी है, इसलिए जाने दीजिये, लेट गो कीजिये! हम कषायों से मुक्त होने आये हैं। हम कषाय नहीं हो इसलिए ठगाते हैं। इसलिए दोबारा भी ठगायेंगे। जान-बूझकर ठगे जाने में मज़ा आयेगा कि नहीं? जान-बूझकर ठगानेवाले कम होंगे न?

प्रश्नकर्ता : होते ही नहीं।

दादाश्री : बचपन से मेरा 'प्रिन्सिपल' (सिद्धांत) रहा था कि समझकर ठगाना! बाकी कोई मुझे उल्लू बनाये और ठग जाए उस बात में कोई दम नहीं है। यह जान-बूझकर ठगे जाने पर क्या हुआ? ब्रेन टॉप पर पहुँच गया, बड़े-बड़े जजों का ब्रेन काम नहीं करता ऐसे काम करने लगा। जज जो होते हैं वे भी समझ के साथ ठगानेवालों में से होते हैं। और जान-बूझकर ठगे जाने पर ब्रेन टॉप पर पहुँच जाता है। पर देखना, तू ऐसा प्रयोग मत करना। तूने तो ज्ञान लिया है न? यह तो जब ज्ञान नहीं लिया हो तब ऐसा प्रयोग करना है।

अर्थात् जान-बूझकर ठगाना है, पर वह किसके साथ ऐसे ठगाना है? जिसके साथ हमारा रोजाना व्यवहार हो उसके साथ! और बाहर भी कभी-कभी किसी से ठगाना, मगर समझ-बूझकर! सामनेवाला समझे कि मैंने इसे ठग लिया और हम समझे कि उसे उल्लू बनाया।

धंधे में भी ओपन टु स्काय

धंधे के बारे में तो मैं सबकुछ जैसा हो वैसा बता देता था। इस

पर एक आदमी कहने लगा कि, 'ऐसा क्यों बता देते हैं?' तब मैंने कहा कि, 'जिसे लोगों के पास से रुपया लोन(कर्ज) पर लेना हो वह गुप्त रखेगा। हमें कुछ लोन की ज़रूरत नहीं है। और यदि कोई देना चाहें तो सरेआम दे। हमारा तो ऑपन टु स्काय जैसा है। इसलिए कह देता कि इस साल बीस हजार का घाटा हुआ है। यह मैं ऑपन ही कह देता। झंझट ही नहीं न!'

हिसाब मिला और चिंता समाप्त

ज्ञान होने से पहले हमारे धंधे में एक बार क्या हुआ कि एक साहब ने हमारा यकायक एकदम से दस हजार का नुकसान कर दिया, हमारा एक काम साहब ने यकायक नामंजूर कर दिया। उन दिनों दस हजार रुपये की बहुत बड़ी क़ीमत थी, आज तो दस हजार किसी गिनती में नहीं है न! मुझे उस दिन गहरा धक्का लगा और चिंता होने लगी, वहाँ तक बात जा पहुँची थी। तब उसी क्षण मुझे भीतर से आवाज सुनाई दी कि, 'इस धंधे में हमारी खुद की पार्टनरशीप कितनी?' उन दिनों हम दो पार्टनर थे, फिर मैंने हिसाब लगाया कि दो पार्टनर तो कागज़ पर हैं,पर वास्तव में कितने हैं? वास्तव में तो मेरी घरवाली, पार्टनर की वाइफ उसके बेटे-बेटियाँ, ये सारे पार्टनर ही कहलाए न! तब मुझे लगा कि इन सभी में से कोई चिंता नहीं करता, तो मैं अकेला सारा बोझ अपने सिर पर क्यों लूँ? उस दिन मुझे इस विचार ने बचा लिया। बात सही है न?

यदि घाटे की अपेक्षा करें तो?

हमनें भी सारी जिन्दगी कॉन्ट्रेक्ट का धंधा किया है। तरह-तरह के कॉन्ट्रेक्ट किये हैं। उनमें समंदर में जेटियाँ भी बनाई हैं। अब वहाँ पर धंधे की शुरूआत में क्या करता था? जहाँ पर पाँच लाख का मुनाफ़ा होनेवाला हो वहाँ पहले से ही तय करता था कि यदि लाख रुपये मिल जाएँ तो काफ़ी है। वरना आखिर नफ़ा-नुकसान नहीं हो और इन्कमटैक्स भरने जितना मिले और हमारा खर्चापानी निकल गया तो मानों बहुत हो गया। और बाद में तीन लाख मिले तब मन में कैसा आनंद रहेगा? क्योंकि धारणा

से अधिक जो मिल गये। यह तो धारणा हो चालीस हजार की और यदि बीस हजार मिले तो दु:खी-दु:खी हो जाए।

देखिये, तरीका ही पागलों-सा है न! जीवन जीने का तरीका ही पागलों जैसा है न! और यदि पहले से घाटा ही निर्धारित करे उसके जैसा सुखिया तो और कोई नहीं होता। घाटे का ही उपासक हो, फिर जीवन में घाटा आनेवाला ही नहीं!

मतभेद मिटाने मुसीबतें झेलीं

साझीदार के साथ हमने पैंतालीस साल साझेदारी की, पर एक भी मतभेद नहीं हुआ। तब कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ी होंगी? अंदरूनी मुसीबतें तो होती है न? क्योंकि इस दुनिया में मतभेद माने क्या? कि मुसीबतें झेलना।

परिणाम स्वरूप, साझीदार ने देखे भगवान

अर्थात् ज्ञान होने से पहले भी हमने मतभेद नहीं होने दिया था। खटमल के साथ भी मतभेद नहीं। खटमल भी बेचारे समझ गये थे कि यह बिना मतभेद के मनुष्य है, हम अपना क्वॉटा (हिस्सा) लेकर चलते बनें।

प्रश्नकर्ता : पर आप जो दे दिया करते थे, वह पूर्व का सेटलमेन्ट (हिसाब चुकता) होता होगा कि नहीं, इसका क्या प्रमाण?

दादाश्री : सेटलमेन्ट ही। यह कोई नई बात नहीं है। मगर सवाल सेटलमेन्ट का नहीं मगर अब नये सिरे से भाव बिगड़ना नहीं चाहिए। वह तो सेटलमेन्ट है, इफेक्ट (परिणाम) है पर इस समय नया भाव नहीं बिगड़ता। नया भाव हमारा पुख्ता हो कि यही करेक्ट (सही) है।

प्रश्नकर्ता : इससे क्लेश में से मुक्ति भी रहे।

दादाश्री : हाँ, सहन करने पर क्लेश में से मुक्ति भी रहे और सिर्फ क्लेश-मुक्ति ही नहीं, साथ ही सामनेवाला मनुष्य, साझीदार और उसके

सारे परिवार की उर्ध्वगति होगी। हमारा ऐसा देखकर उसका भी मन विशाल हो जायेगा। संकीर्ण मन विशाल हो जायेंगे। साझीदार भी रात-दिन साथ रहने के बावजूद आखिर ऐसे ही सत्कार किया करते थे कि 'दादा भगवान आइये, आप तो भगवान ही हैं।' देखिये, साझीदार को मेरे ऊपर प्रेम आया कि नहीं? साथ रहे, मतभेद नहीं हुआ और प्रेम उत्पन्न हुआ! इस हालात में उनको कितना लाभ होगा!

अपने खुद के लिए मैंने कुछ नहीं किया। वह धंधा तो अपने आप चलता था। हमारे साझीदार इतना कहते थे कि, 'आप यह जो आत्मा संबंधी सब करते हैं, वह करते रहिए और दो-तीन महिने पर एकाध बार कार्य का निर्देश दे जाना कि 'ऐसे करना'। बस इतना काम वे मुझ से लिया करते थे।

प्रश्नकर्ता : पर, साझीदार का भी कुछ अंदाज़ तो होगा न, कुछ पाने का? साझीदारी करेंगे तो खुद को कुछ लाभ होता हो तभी साझीदार बनाएँगे न?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : तो वहाँ उस समय उसे कौन-सा लाभ हुआ?

दादाश्री : उसे तो सांसारिक रूप से, पैसों के मामले में भी सारा लाभ होगा न! वह तो अपने बेटों को सूचना दे गये थे कि दादाजी की उपस्थिति वह श्रीमंताई है। मुझे कभी भी पैसों की कमी नहीं आई है।

(५) जीवन में नियम

टेस्टेड किया अपने आपको

१९६१-६२ में मैंने एक बार कहा था कि, 'जो मुझे एक थप्पड़ मारेगा, उसे मैं पाँच सौ रुपये दूँगा।' पर कोई थप्पड़ मारने ही नहीं आया। मैंने कहा, 'अरे, पैसों की कमी हो तो लगा दे न!' तब कहे, 'नहीं, मेरी क्या गत होगी?' कौन मारता? ऐसा करने कौन आये? अगर कोई मुफ्त में मारता है उस दिन उसे महा पुण्य समझना चाहिए कि हमें इतना बड़ा

पुरस्कार आज दिया। यह तो बहुत बड़ा पुरस्कार समझना चाहिए। वह तो पहले हमने भी देने में कोई कसर नहीं छोड़ी है न, वही वापस आता है यह सब।

मैं क्या कहना चाहता हूँ कि इस दुनिया का क्रम कैसा है कि आपको जो कमीज़ १९९५ में मिलनेवाली है उसे आपने आज उपयोग में ले ली, तो १९९५ में बिना कमीज़ के रह जायेंगे, यह स्पष्ट करना चाहता हूँ, ताकि आप उसे सलिके से उपयोग में लाएँ। बिना छीज के किसी चीज़ को निकाल मत देना और यदि निकालनी पड़े तब भी कहीं न कहीं छीज पड़ने के पश्चात् ही निकाली जाए। ऐसा मेरा नियम रहा है। इसलिए मैं कहता हूँ कि इतनी घीसाई अभी नहीं हुई, इसलिए चीज़ निकालना नहीं। क्योंकि थोड़ी-सी छीज हुई हो और अभी चीज़ काम में लाई जा सकती हो, उसे यों ही निकाल फेंकना वह तो मिनिंगलेस (अर्थहीन) ही कहलाये न! अर्थात् ये सारी चीज़ें जो आप उपयोग में लाते हैं उसका कोई हिसाब तो होगा कि नहीं होगा? वह सब हिसाब है और कहाँ तक का हिसाब है, कि एक परमाणु तक का हिसाब है, बोलिये, वहाँ अंधेर कैसे चलनेवाला है? 'व्यवस्थित' का ऐसा नियम है, परमाणु तक का हिसाब है। इसलिए कुछ बिगाड़ना नहीं।

संसार में पोल नहीं चलता

ज्ञानी पुरुष को त्यागात्याग संभव नहीं, फिर भी मुझे पानी का बिगाड़ करना पड़ता है। हमें पैर में जो फ्रेक्चर हुआ, इसलिए विलायती संडास में बैठना पड़ता है, जहाँ फिर पानी के लिए जंजीर खिंचनी पड़ती है और दो डिब्बे पानी बह जाता होगा। यह किसलिए कहता हूँ? पानी की कमी है इसलिए अथवा पानी क़ीमती है इस कारण? नहीं, पर पानी के कितने ही जीव यों ही बिना वजह टकरा-टकराकर मारे जाते हैं। और जहाँ कम पानी से काम हो सकता है वहाँ इतना सारा बिगाड़ क्यों किया जाए? यद्यपि मैं तो ज्ञानी पुरुष हूँ इसलिए भूल होते ही तुरंत दवाई डाल (प्रतिक्रमण कर) देता हूँ। फिर भी दवाई तो हमें भी डालनी होगी, क्योंकि वहाँ ज्ञानी पुरुष हो कि जो कोई भी हो, किसी की चलती नहीं है। यह अँधेर नगरी

में गंडु राजा का राज नहीं है, वीतरागों का शासन है। चौबीस तीर्थंकरों का शासन है। आपको भाती है यह तीर्थंकरों की ऐसी बात?

जागृति, जुदापन की

मुझे कभी-कभी बुखार चढ़ता है तब कोई आकर पूछे कि, 'आपको बुखार आया है क्या?' तब मैं कहता हूँ कि, 'हाँ, भैया ए.एम.पटेल को बुखार आया है, जिसे मैं जानता हूँ।' 'मुझे बुखार आया' ऐसा कहूँ तो मुझ से लिपट जायेगा। खुद के लिए जैसी कल्पना करेगा तुरंत ही खुद वैसा हो जायेगा। इसलिए मैं ऐसा नहीं बोलता कि 'मुझे बुखार आया है'।

'हमारे' अनुभव की बात

मैं फर्स्ट क्लास में रेलयात्रा नहीं करता, क्योंकि दूसरे पैसेंजर फिर पीछा करते हैं। मुझे उलटा-सीधा बोलना नहीं आता, वे पूछें कि आपका पता-ठिकाना क्या है, तब मैं सही-सही बता दूँ और वह खोजता हुआ घर पर आ धमकें। अर्थात् यह सब बेतुकी झंझट क्यों मोल लेना? इसकी तुलना में मेरे सगे भाईओं जैसे थर्ड क्लास के पैसेंजर अच्छे हैं। तात्पर्य क्या है कि आने-जाने पर किसी की ठोकरें लगें तो अंदरूनी कषाय भाव क्या है इसका पता चले। किसी की ठोकर लगने पर भीतरी कमजोरियों का पता चले। ताकि इस तरह सारी कमजोरियाँ निकल जाएँ।

रेलयात्रा पूरी होने के बाद जब पैर दुखने लगे तब क्या कहूँ, 'अंबालालभाई, आपके पैरों में बहुत दर्द हुआ, नहीं? थक गये हैं क्या ? सिकुड़कर बैठना पड़ा इसलिए पैर दुःखते होंगे।' फिर बाथरूम में ले जाकर पीठ थपथपाऊँ, 'मैं हूँ न आपके साथ, डरते क्यों हैं? हम, शुद्धात्मा भगवान जो है आपके साथ।' ताकि फिर से फर्स्ट क्लास हो जाए।

मुसीबत में आने पर पीठ थपथपाकर कहना। ज्ञान होने से पहले अकेले थे, अब दो हुए। पहले तो किसी का भी सहारा नहीं था। खुद ही अपने आप सहारा ढूँढते रहें। अब एक से दो हुए। ऐसा कभी किया था या नहीं?

प्रश्नकर्ता : किया था।

दादाश्री : उस समय हमें अलग तरह का महसूस होता है न? मानों सारे ब्रह्मांड के राजा हो ऐसे बोलना चाहिए। यह सारी अपने अनुभव की बात मैंने आपको बता दी।

मैं 'ए.एम.पटेल' के साथ बहुत बातें किया करता था। मुझे अच्छी लगे ऐसी बातें किया करता था। हम भी इतने बड़े छिहत्तर साल के अंबालालभाई से ऐसा कहते हैं न! 'छिहत्तर साल हुए, कुछ सयाने हुए हैं? वह तो अनुभव से सही ज्ञान पाकर सयाने हुए हैं।'

प्रश्नकर्ता : आप कब से बातें किया करते थे?

दादाश्री : ज्ञान होने के बाद। पहले तो कैसे बात करता मैं? 'मैं अलग हूँ' ऐसा भान हुआ उसके बाद में।

जब ब्याहने बैठे थे उसे याद करके अंबालाल से कहे कि, 'ओहोहो! आप तो ब्याहने बैठे थे न क्या! फिर सिर पर से पगड़ी खिसक गई थी, फिर आपको विधुर होने का विचार आया था' ऐसा भी सुनाऊँ मैं। ब्याहते समय का लग्न मंडप, पगड़ी कैसे सरक गई थी, सब नज़र आये। विचार आते ही नज़र आये। हम बोलें और हमें आनंद आये। ऐसी बात करने पर वे खुश हो जाएँ।

(६) पत्नी हीराबा के साथ एडजस्टमेन्ट

मतभेद टालनें सावधानी ही बरती

ब्याहते समय पुकारते हैं, 'समयानुसार सावधान'। यह जो महाराज कहते हैं वह सही है, समय आने पर सावधान रहने की आवश्यकता है, इसी शर्त पर संसार में ब्याहा जाता है। वह यदि उछल पड़ी हो और हम भी उछल पडें, वह असावधानी कहलाये। वह जब उछल पड़े तो हम शांत हो जाएं। सावधानी बरतना जरूरी नहीं क्या? ऐसे हम सावधानी बरतते थे। दरार-वरार होने नहीं देते। दरार पड़ने की नौबत आने पर वेल्डिंग कर दे फिर।

मेरी तीस साल की उम्र में ही मैंने सब रिपेर कर दिया था। घर में फिर झंझट ही नहीं, मतभेद ही नहीं। यद्यपि पहले हमारा उनसे बखेड़ा होता था, वह नासमझी का बखेड़ा था। क्योंकि स्वामीत्व जताने गये थे।

प्रश्नकर्ता : सभी जो स्वामीत्व जताते हैं और दादाजी आप यदि स्वामीत्व जतायेंगे, उसमें अंतर तो रहेगा ही न?

दादाश्री : अंतर? कैसा अंतर? स्वामीत्व जताना माने पागलपन! मेडनेस कहलाये!! अंधेरे के कितने भेद होते हैं?

प्रश्नकर्ता : फिर भी आपका थोड़ा अलग तरह से होता होगा न? आपका तो कुछ नई तरह का ही होगा न?

दादाश्री : थोड़ा अंतर रहेगा। एक बार मतभेद बंद करने के बाद फिर से उस बात पर मतभेद होने नहीं दिया। और यदि हो गया तो हमें मोड़ना आता है। मतभेद तो प्राकृतिक रूप से हो जाए, क्योंकि मैं उसके भले के खातिर कहता होऊँ फिर भी उसे उलटा लगे तो फिर उसका क्या उपाय है? सही-गलत करने जैसा ही नहीं है इस संसार में। जो रुपया चला वह खरा और नहीं चला वह खोटा। हमारे तो सारे रुपये चलते हैं। आपका तो कहीं-कहीं नहीं चलता होगा न?

प्रश्नकर्ता : यहाँ दादाजी के पास चलता है, और कहीं नहीं चलता।

दादाश्री : ऐसा? ठीक है तब! इस ऑफिस में चलता है तो भी बहुत हो गया। यह तो दुनिया का हेड ऑफिस कहलाये, हम ब्रह्मांड के मालिक जो ठहरे! ऐसा सुनने पर लोग प्रसन्न हो जाएँ कि ब्रह्मांड के मालिक! ऐसा तो किसी ने कहा ही नहीं है। और बात भी सही है न! जिसका इस मन-वचन-काया का स्वामीत्व छूट गया, वह सारे ब्रह्मांड का मालिक गिना जाएँ।

पत्नी से प्रोमिस किया, इसलिए...

हीराबा की एक आँख १९४३ के साल में चली गई। उनको ग्लुकोमा

की (आँख की) बीमारी थी। डॉक्टर उनका इलाज कर रहे थे और आँख को असर हो गया, इसलिए नुकसान हुआ।

इस पर लोगों के मन में हुआ कि यह एक 'नया दुल्हा' पैदा हुआ। फिर से ब्याह रचायें। कन्याओं की भरमार थी न! और कन्याओं के माता-पिता की इच्छा ऐसी कि इधर-उधर से कैसा भी करके आखिर कुएँ में धकेलकर भी निबटारा करना। इसलिए भादरण के एक पटेल आये, उनके साले की बेटी होगी, इसलिए आये। मैंने पूछा, 'क्या चाहिए आपको?' इस पर उसने कहा, 'आप पर कैसी गुजरी?' अब उन दिनों, १९४४ में मेरी उम्र छत्तीस साल की थी। उस समय मैंने उससे कहा, 'क्यों आप ऐसा क्यों कहते हैं?' इस पर वे कहते हैं, 'एक तो हीराबा की आँख चली गई। दूसरा, उनकी कोई संतान भी नहीं है।' मैंने कहा, 'संतान नहीं है कोई, पर मेरे पास कोई स्टेट भी नहीं है। बडौदा जैसी रियासत नहीं है कि मुझे उसका उत्तराधिकारी चाहिए। यदि स्टेट होता तो संतान को दिया कहलाये। यह एकाध छपरिया हो, थोड़ी-बहुत जमीन हो और वह भी हमें फिर किसान ही बनाये न! अगर यह स्टेट होता तो ठीक है!' और फिर मैंने उसे पूछा कि, 'आप ऐसा क्यों कहते हैं? हमने हीराबा से जब शादी हुई तब प्रोमिस किया है। इसलिए एक आँख चली गई तो क्या हुआ! दोनों आँख चली जायेगी तब भी मैं हाथ पकड़कर चलाऊँगा।' उसने पूछा, 'आपको दहेज देंगे तो कैसा रहेगा?' मैंने कहा, 'आप अपनी बेटी को कुएँ में धकेलना चाहते हैं? इससे तो हीराबा को दुःख होगा। हीराबा को दुःख होगा कि नहीं होगा? उनको लगेगा कि मेरी आँख चली गई इसलिए यह नौबत आई न!' हमने तो प्रोमिस टु पे किया है (वचन दिया है)। मैंने उसे बताया, 'मैं किसी भी हालत में मुकरनेवाला नहीं, चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाए तब भी प्रोमिस माने प्रोमिस!' क्योंकि मैंने प्रोमिस किया है, प्रोमिस करने के बाद मुकरते नहीं। हमारा एक जनम उसके लिए, क्या तबाही हो जायेगी उससे! शादी के मंडप में हाथ थामा था, हाथ थामा माने प्रोमिस किया हमने। और सभी की हाजिरी में प्रोमिस किया था। क्षत्रिय के तौर पर हमने जो प्रोमिस किया हो, उसके लिए एक अवतार न्योच्छावर कर देना चाहिए।

कैसी समझ? कैसा एडजस्टमेन्ट?

हम भी यदि कढ़ी खारी आये तो कम खायेंगे या फिर कढ़ी खाये बिना नहीं चला सकें तो धीरे से उसमें थोड़ा पानी मिला दें। खारी हो गई हो तो थोड़ा पानी मिलाने पर तुरंत खारापन कम हो जायेगा। इस पर एक दिन हीराबा ने देख लिया तो वह चिल्ला उठी, 'यह क्या किया? यह क्या किया? आपने उसमें पानी डाला?' तब मैंने कहा कि, 'यह चुल्हे पर पानी उँडेल कर पकाते है तब थोड़ी देर के बाद दो उफान आते हैं न? इस पर आप समझती हैं कि पक गई और यहाँ मैंने पानी उँडेला इसलिए कच्ची है ऐसा आप समझती है मगर ऐसा कुछ भी नहीं है।' पर वह क्या ऐसे माननेवाली थी? नहीं खाने देती। चुल्हे पर भी तो पानी ही उँडेलना है न?

यह तो सारी मन की मान्यताएँ हैं। मन ने यदि ऐसा मान लिया तो ऐसा सही समझेंगे, वरना कहेंगे कि बिगड़ गया। पर कुछ बिगड़ता ही नहीं न! वही के वही पाँच तत्त्वों की बनी सारी चीज़ें हैं : वायु, जल, तेज, पृथ्वी और आकाश! इसलिए कुछ बिगड़ना-करना नहीं होता।

निरंतर जागृति यज्ञ से फलित 'अक्रम विज्ञान'

प्रश्नकर्ता : पर दादाजी आपने जो किया वह कितनी जागृति के साथ पानी उँडेला होगा? आप उन्हें दु:ख नहीं हो इसलिए कहना नहीं चाहते थे कि, नमक ज़रा ज्यादा हो गया है इसलिए पानी उँडेला।

दादाश्री : हाँ, अरे कई बार तो चाय में शक्कर नहीं होती थी, तब भी हमने मुँह नहीं खोला था। इस पर लोग कहते कि, 'ऐसा चला लोगे तो सारा घर बिगड़ जायेगा।!' मैं कहता, 'कल देख लेना आप।' फिर दूसरे दिन वही कहे कि, 'कल चाय में शक्कर नहीं थी फिर भी आप कुछ बोले नहीं हमसे?' मैंने कहा, 'मुझे आपसे कहने की क्या ज़रूरत? आपको मालूम होनेवाला ही था! अगर आप चाय नहीं पीनेवाली तब मुझे कहने की जरूरत पड़ती। मगर आप भी चाय पीती हैं, फिर मैं क्यों आपको कहूँ?'

प्रश्नकर्ता : पर कितनी जागृति रखनी पड़े पल-पल?

दादाश्री : प्रत्येक क्षण, चौबीस घंटे जागृति, उसके बाद यह ज्ञान प्राप्त हुआ था। यह ज्ञान कुछ यों ही नहीं हुआ है।

हम यह जो कुछ बोलते हैं न, वह आपके पूछने पर उस जगह का दर्शन उभरे। दर्शन माने यथापूर्व जैसे हुआ हो वैसे नजर आना। जैसे हुआ था वैसे तादृश नज़र आये।

मतभेद से पहले ही सावधान

हमारे में यदि कलुषित भाव नहीं रहा तो सामनेवाले को भी कलुषित भाव नहीं होगा। हमारे नहीं चिढ़ने पर वे भी ठंडे हो जायेंगे। दीवार समान हो जाना ताकि सुनाई नहीं दे। हमारी शादी को पचास साल हो गये पर किसी दिन मतभेद ही नहीं हुआ। हीराबा के हाथों से घी उँडेला जा रहा होने पर भी मैं चुपचाप देखता ही रहूँ। उस समय हमारा ज्ञान हाज़िर रहें कि वह घी उँडेलेंगी ही नहीं। मैं यदि कहूँ कि उँडेलिए तब वह नहीं उँडेलेंगी। जान-बूझकर कोई घी उँडेलता है कभी? नहीं न? फिर भी घी उँडेला जा रहा है, वह हम देखते रहें। मतभेद होने से पहले हमारा ज्ञान ऑन द मॉमेन्ट (तत्क्षण) हाज़िर रहता है।

प्रकृति को पहचानकर समाधान से पेश आयें

हमारे घर में कभी भी मतभेद नहीं हुआ। हम ठहरे पाटीदार इसलिए हिसाब में हमारी गिनती नहीं होती। मतलब जब घी परोसना होता है तब घी का पात्र आहिस्ता-आहिस्ता, घी हिसाब से परोसा जाए ऐसे नहीं झुकाते। फिर कैसे झुकाते होंगे हम? यों सीधे नाईन्टी डिग्री पर ही! और अन्यत्र लोग तो क्या करेंगे? वहाँ देखें तो, हर समय डिग्री डिग्रीवाला (थोड़ा-थोड़ा, एकदम से उँडेलते नहीं)। यह हीराबा भी डिग्री-डिग्रीवालों में से थीं। यह सब मुझे नहीं भाता था और मन में होता था कि यह तो हमारा बुरा दिखता है। पर हमने प्रकृति को पहचान लिया था कि यह ऐसी प्रकृति है। मगर यदि हमने कभी उँडेल दिया तो वह चला लेगी। वह भी हमसे कहा करती कि 'आप तो भोले हैं, सबको बाँटते फिरते हैं।' उनकी बात भी सही! मैंने अलमारी की चाबी उसे दे रखी थी। क्योंकि कोई आने पर,

वह सचमुच दु:खी है कि बनावट करता है यह देखे बगैर मैं तुरंत दे दिया करता था। मुझ से ऐसी गलतियाँ होती रहें और सामनेवाले को बिना वजह एन्करेजमेन्ट (प्रोत्साहन) मिलता रहें, ऐसा हीराबा का अनुभव था और इसलिए मैंने फिर चाबी उन्हें ही सौंप दी थी। यह सब अज्ञान दशा में होता था, ज्ञान होने के पश्चात् कभी मतभेद नहीं हुआ।

मुकर कर भी टाला मतभेद

मैं आप सभी को जो यह बता रहा हूँ वह मुझ पर बिना ट्रायल लिए नहीं बताता हूँ। सारी आजमाइश करने के बाद की बातें हैं। क्योंकि ज्ञान नहीं था तब भी वाइफ के साथ मुझे मतभेद नहीं था। मतभेद माने दीवार से सिर टकराना। लोगों को भले ही इसकी समझ नहीं है पर मेरी समझ में आ गया था कि यह खुली आँख दीवार से टकराया, मतभेद की वजह से!

हुआ क्या कि, एक बार हीराबा से हमारा मतभेद हो गया। मैं भी फँसाव में आ गया। मेरी पत्नी को मैं 'हीराबा' संबोधन करता हूँ। हम ज्ञानीपुरुष ठहरे, हम सभी बुझुर्ग स्त्रियों को 'बा' (माता) कहें और बाकी सबको 'बिटियाँ' कहें। इसलिए आप बात जानना चाहतें हैं तो बताता हूँ, बहुत लम्बी कहानी नहीं है, बात छोटी सी है।

एक बार हमारा भी मतभेद हो गया। मैं फँस गया। हीराबा मुझसे कहती है, 'मेरे भाई की चार बेटियाँ हैं, उनमें से सबसे बड़ी बेटी की शादी है, उसे हम चाँदी की कौन-सी चीज़ देंगे?' तब मैंने कहा, 'घर में जो भी हो दे देना।' इस पर वह क्या कहने लगी? हमारे घर में आम तौर पर 'तेरी-मेरी' शब्द का प्रयोग नहीं होता, 'हमारा-अपना' का ही प्रयोग हुआ करता है। पर उस दिन उन्होंने कहा कि, 'यह आपके मामा के बेटों को तो इतने बड़े बड़े चादी के थाल दिया करते हैं!' अर्थात् उस दिन बात-बात में 'मेरी-तेरी' हो गई। 'आपके मामा के बेटे' कहा, यहाँ तक नौबत आ गई। इतनी मेरी नासमझी, ऐसा मुझे लगा। मैं तुरन्त मुकर गया। मुकर जाने में हर्ज नहीं है। मतभेद होने देने से मुकर जाना बेहतर है, इसलिए

मैं उसी क्षण मुकर गया। मैंने कहा, 'मैं ऐसा कहना नहीं चाहता, साथ में नगद पाँच सौ एक रुपया दे देना।' तब वह कहने लगे कि 'क्या?! आप तो भोले के भोले ही रहें! बहुत भोले हैं! इतने सारे रुपये कोई देता है कहीं?!' देखिये जीत हुई न मेरी! मैंने कहा, 'पाँच सौ एक नगद देना और चांदी के छोटे बरतन भी देना।' तब वह क्या कहती है, 'आप भोले हैं। इतना सारा दिया जाता हैं कहीं?' देखिये, मिटा दिया न मतभेद! मतभेद तो होने ही नहीं दिया और ऊपर से उन्होंने हमसे कहा कि, 'आप भोले हैं!' यह तो 'मेरे' भैया के यहाँ आप कम देते हैं यह विचार उनके मन में उठते थे, उसके बदले उन्होंने ऐसा कहा कि इतने सारे नहीं देने चाहिए।

खोटे सिक्के, भगवान के चरणों में

घर में अपना चलन नहीं रखना। जो मनुष्य चलन रखता है, उसे भटकना पड़ता है। हमने भी हीराबा से कह दिया था कि हम खोटे सिक्के हैं। हमें भटकना पुसाता नहीं न! खोटा सिक्का हो वह किस काम का? वह भगवान के पास पड़ा रहेगा। घर में अपना अधिपत्य जमाने जाओगे तो टकराव होगा न? हमें अब 'समभाव से निकाल (निपटारा)' करना है। घर में वाइफ के साथ 'फ्रेन्ड' (मित्र) जैसा रहना है। वह आपकी 'फ्रेन्ड' और आप उसके 'फ्रेन्ड'! और यहाँ कोई लिखकर नहीं रखता कि चलन तुम्हारा था कि उनका था! म्युनिसिपालिटी में भी नोट नहीं होता और भगवान के यहाँ भी नोट नहीं कीया जाता। हमें भोजन से लेना-देना है कि चलन से? इसलिए अच्छा भोजन किस प्रकार मिल पाता है इसकी तलाश कीजिये। अगर म्युनिसिपालिटीवाले नोट रखते कि घर में किसका चलन है, तब तो मैं भी एडजस्ट नहीं होता। यह तो कोई भी नोट नहीं करता है।

जब हम बडौदा जाएँ तब हमारे घर में हीराबा के गेस्ट की तरह रहते हैं। यदि घर में कुत्ता घुस आये तब हीराबा को तकलीफ होगी, 'गेस्ट' को क्या तकलीफ? कुत्ता घुस आये और घी में मुँह डाला तो जो मालिक होगा उसें चिंता होगी, गेस्ट को क्या? गेस्ट तो यों ही देखा करे। बहुत होने पर पूछेगा कि, 'क्या हो गया?' तब कहें कि, 'घी बिगड़ गया।' इस

पर गेस्ट कहेगा, 'अरे, बहुत बुरा हुआ' ऐसा नाटकीय रूप से कहेगा। बोलना तो पड़ेगा कि 'बहुत बुरा हुआ'। यदि हम कहें कि, 'अच्छा हुआ' तो घर से बाहर निकाल देंगे। हमें गेस्ट के तौर पर नहीं रहने देंगे।

आपके बगैर अच्छा नहीं लगता

मैं इतनी उम्र होने के बावजूद हीराबा से कहा करता हूँ, 'मैं जब बाहर गाँव जाता हूँ, तब आपके बगैर अच्छा नहीं लगता।' अगर मैं ऐसा न कहूँ तो वह मन में क्या क्या सोचेगी? मुझे अच्छा लगता है तो उनको क्यों अच्छा नहीं लगता होगा? ऐसा कहने पर संसार बना रहता है। अब तू घी उँडेल न, नहीं उँडेलेगा तो रुखा-सुखा लगेगा। सुंदर भाव उँडेल! मैं कहता हूँ न! फिर मुझसे पूछती है, 'आपको मेरी भी याद आती है?' मैं कहूँ, 'बहुत याद आती है, दूसरे लोगों की याद आती है तो आपकी नहीं आयेगी क्या?' और याद आती भी है, नहीं आती ऐसा भी नहीं है।

कितना सँभाला होगा तब?

पैंतालीस साल हो गये, हमें घर में वाइफ के साथ मतभेद नहीं हुआ है। वह भी मर्यादा में रहकर बात करेगी और मैं भी मर्यादा में रहकर बात करता हूँ। वह किसी दिन मर्यादा के बाहर की बात करें तो मैं समझ जाऊँ कि वह मर्यादा छोड़ रही है। इसलिए मैं कह दूँ कि आपकी बात ठीक है, पर मतभेद होने नहीं देता। एक मिनट के लिए उसे ऐसा महसूस नहीं होने देता कि मुझे दुःखी करते हैं। हमें भी नहीं होता कि वह हमें दुःखी करती हैं।

एक आदमी ने मुझे पूछा कि, 'वर्तमान में आपकी वाइफ के साथ आपका व्यवहार कैसा है? 'लीजिये, लाइये' कहा करते हैं? मैंने कहा, 'नहीं, 'हीराबा' कहता हूँ, वह इतनी बड़ीं छिहत्तर साल की और मैं अठहत्तर का, कहीं 'लीजिये, लाइये' कहना शोभा देगा? में हीराबा कहकर पुकारता हूँ।' फिर वह पूछने लगा, 'आपके प्रति उन्हें पूज्यभाव है क्या?' मैंने कहा, 'मैं जब बडौदा जाता हूँ न, तब पहले विधि करने के बाद आसन लेती हैं। यहाँ चरणों से सिर लगाकर विधि करतीं हैं। प्रतिदिन विधि करने से नहीं

चुकतीं। किसी भी ज्ञानी की स्त्री ने ऐसे विधि नहीं की है। इन सभी ने देखा है, तब हमने उसकी कैसी देखभाल की होगी कि वह विधि करेगी!' इसका अँदाजा आपको इस बात से आ जायेगा।

विषय समाप्ति के बाद का संबोधन, 'बा'

जब से हीराबा के साथ मेरा विषय समाप्त हुआ होगा, तब से मैं 'हीराबा' पुकारता हूँ उन्हें। (दादाजी ३५ साल की उम्र में ब्रह्मचर्य में आ गये थे।) तत्पश्चात् हमें वाईफ के साथ कोई टकराव नहीं हुआ। और पहले जो टकराव था वह विषय को लेकर, सहचर्य में तो थोड़ा-बहुत टकराव होता रहता, लेकिन जहाँ तक विषय का डंक रहा वहाँ तक वह जानेवाली कहाँ? उस डंक के छूटने पर जाए। यह हमारा स्वानुभव बयान करते हैं। यह तो हमारे ज्ञान की वजह से अच्छा है, वरना यदि ज्ञान नहीं होता तब तो डंक लगते ही रहें। उस हालत में तो अहंकार होगा न! उसमें अहंकार का एक हिस्सा 'भोग' होता है कि उसने मुझे भुगत लिया और यह कहें, 'उसने मुझे भुगत लिया।' और यहाँ पर (ज्ञान के पश्चात्) उसका निपटारा किया जाता है। फिर भी वह डिस्चार्जवाली किच-किच तो रहेगी ही। पर वह भी हमारे बीच नहीं थी, वैसा किसी प्रकार का मतभेद नहीं था।

(७) ज्ञानी दशा में बरते ऐसे

प्रत्येक पर्याय में से पार

यह सब तो मेरी पृथक्करण की गई वस्तुएँ हैं, और वह एक अवतार का नहीं है। एक अवतार में तो इतने सारे पृथक्करण कहाँ संभव है? अस्सी साल में कितने पृथ्थकरण कर पायेंगे भला? यह तो अनेकों अवतारों का पृथक्करण है, जो आज सब प्रकट हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : इतने सारे अवतारों का पृथक्करण इस समय इकट्ठा कैसे प्रकट होगा?

दादाश्री : आवरण टूटा इसलिए। अंदर ज्ञान तो सारा विद्यमान है ही। आवरण टूटना चाहिए न? ज्ञान तो शेष है ही, पर आवरण टूटने पर प्रकट हो जाए।

सभी फेज़ीस (पहलू) का ज्ञान मैंने खोज़ निकाला था। हर 'फेज़ीस' में से मैं पार निकल आया हूँ और हर फेज़ीस का मैंने 'एन्ड' कर दिया है। उसके बाद यह 'ज्ञान' हुआ है।

बोलते समय भी शुद्ध उपयोग

यह हम जो कुछ बोलते हैं, वह उपयोग के साथ बोलते हैं। यह रिकार्ड बोले (मुँह से वाणी निकले), उस पर हमारा उपयोग रहेगा कि, क्या क्या भूलें हैं और क्या नहीं? स्याद्वाद में कोई गलती है, इसे हम बारीकी से देखा करते हैं और जो बोल रहे हैं वह रिकार्ड है। लोगों को भी रिकार्ड ही बोले, पर वे मन में समझें कि मैं बोला। हम निरंतर शुद्धात्मा के उपयोग में रहते हैं, आपके साथ बात करते समय भी।

बिना विधि के क्षण भी नहीं गँवाया

हम तो इन बातों में क्या हो रहा है वही देखा करें। हम पलभर के लिए भी, एक मिनट भी उपयोग से बाहर नहीं होते। आत्मा का उपयोग होता ही है।

हमें विधि करनी हो और मन को जैसे ही फुरसत मिले कि तुरन्त अंदर विधि शुरू हो जाए, उस समय सहज रूप से सबको ऐसा लगे कि दादाजी इस समय किसी कार्य में व्यस्त होंगे। मूड नहीं है ऐसा तो किसी को लगे ही नहीं। किसी कार्य में कार्यरत होंगे ऐसा लगे, उतना कार्य हम कर लेते हैं। हमें जो विधि करनी होती है वह करनी शेष रह गई हो। दोपहर में सब आ धमके और नहीं हो पाई हो। तो जब यहाँ फुरसत मिले तब फिर वह भी हो जाए। और वह भी शुद्ध उपयोग के साथ ही होगी।

भोजन के समय, दादाजी का उपयोग....

भोजन के समय हम क्या करते हैं? भोजन में समय ज्यादा लगता है, खायें कम और भोजन करते-करते किसी के साथ बातचीत नहीं करते, हुड़दंग नहीं मचाते। मतलब कि भोजन में ही एकाग्र होते हैं। हम से चबाया

जाता है इसलिए हम चबा-चबाकर खायेंगे और उसका क्या स्वाद है उसे जानेंगे, उसमें लुब्धता नहीं करते। उसमें संसार के लोग लुब्धता करते हैं, जबकि हम उसे जानते हैं। कितना मज़ेदार स्वाद है, उसे जानते हैं कि वह ऐसा था। एक्ज़ेक्ट (यथार्थ रूप से) जानना, स्वादमग्न होना और भुगतना। संसारी मनुष्य या तो भुगतेंगे या तो स्वादमग्न होते हैं।

हम तो ठंड में भी जब हमें शाल ओढ़ाई जाए तब जरा-सी खिसका दें। यदि ठंडी हवा लगेगी तो निंद नहीं आये, ऐसे सारी रात जागते रहें। और यदि ठंड नहीं रही तब खाँसी आने पर जाग जाएँ, फिर उपयोग में रहें।

कितने ही सालों से हम, चाहे रात में तबीयत बिगड़ी हो कि रात में कुछ भी हुआ हो, सुबह एक्ज़ेक्ट साढ़े छह बजे जाग जाते हैं। हमारे जागने पर साढ़े छह ही बजे होते हैं। वास्तव में तो हम सोते ही नहीं हैं। रात में ढ़ाई घंटे तक हमारे भीतर विधियाँ चलती रहें। साढ़े ग्यारह तक सत्संग चले। बारह बजे सो जाएँ, आम तौर पर सोने का सुख, यह भौतिक सुख हम लेते नहीं है।

स्टॉर भी नमस्कार करे, 'इस वीतराग को'

जब अमरिका जाएँ तब हमें शोपिंग मॉल में ले जाते हैं। 'चलिए दादाजी' कहते है। जब हम स्टॉर में जायें तब स्टॉर बेचारा हमें बार-बार नमस्कार करता रहे, कि धन्य है आप, हम पर जरा-सी भी दृष्टि नहीं बिगाड़ी। सारे स्टॉर में कहीं पर भी हमारी दृष्टि नहीं बिगड़ती! हम देखते ज़रूर हैं पर दृष्टि नहीं बिगाड़ते। हमें क्या जरूरत किसी चीज़ की? कोई वस्तु मेरे काम तो आती नहीं! तेरी दृष्टि बिगड़ जाए न?

प्रश्नकर्ता : आवश्यकता हो वह चीज़ खरीदनी पड़े!

दादाश्री : हाँ, हमारी दृष्टि बिगड़ती नहीं। ये स्टॉर हमें दो हाथ जोड़कर नमस्कार करता रहे कि ऐसे पुरुष के आज तक दर्शन नहीं हुए! किसी प्रकार का तिरस्कार भी नहीं। फर्स्ट क्लास, राग भी नहीं, द्वेष भी नहीं, और हमको क्या कहें? वीतराग आये, वीतराग भगवान!

विश्व में वीतराग अधिक उपकारी

यदि मैं शादी में शरीफ हुआ तो शादी क्या मुझसे आ लिपटेगी? हम शादी में जाएँ मगर पूर्णतया वीतराग रह पायें। जब कभी मोहबाज़ार में जाएँ तब संपूर्ण वीतराग हो जाएँ और भक्ति के बाज़ार में जाने पर वीतरागता ज़रा कम हो जायेगी।

व्यवहार बिना तन्मयता का

शादी के, व्यावहारिक अवसरों को निबटाना पड़ता है। जो व्यावहारिक रूप से मैं भी निबटाता हूँ और आप भी निबटाया करते है, पर आप तन्मयाकार होकर निबटाते हैं और मैं उनसे अलग रहकर निबटाता हूँ। अर्थात् भूमिका बदलने की ज़रूरत है, और कुछ बदलना ज़रूरी नहीं है।

ज्ञानी बरतें प्रकट आत्म-स्वरूप होकर

प्रश्नकर्ता : इन तीन दिनों से मेरे मन में एक ही विचार मंडरा रहा है कि आप पचहत्तर साल की उम्र में सबेरे से शाम तक यों ही बैठे हैं और मुझे डेढ़ घंटे में कितनी ही बार हिलना-डुलना पड़ता है, तब आप में ऐसी कौन-सी शक्ति काम कर रही है?

दादाश्री : यह शरीर ज़रूर पुराना है, पर भीतर में सब कुछ जवान है। इसलिए एक ही जगह बैठकर दस घंटों तक मैं बोल सकता हूँ। इन लोगों ने यह देखा है। क्योंकि यह देह भले ही ऐसी नज़र आये, पचहत्तर की असरवाली, बालों को भी असर हुआ है पर भीतर सब कुछ युवा है। इसलिए इस शरीर में जब कोई बिमारी आये तब लोगों से कहता हूँ कि, 'भड़कना नहीं, यह शरीर छूटनेवाला नहीं है। भीतर तो अभी जवान है सब।' ताकि उनकी स्थिरता बनी रहे। क्योंकि हमारी अंदरूनी स्थिति अलग है। एक मिनट के लिए भी मैं थकता नहीं हूँ। इस समय भी रात साढ़े तीन बजे तक हमारे साथ बैठनेवाला चाहिए (यानी उसके साथ सत्संग चलता रहे)।

बाकी वैसे हमारी फ्रेशनेस (ताज़गी) कभी गई नहीं है। आप भी

फ्रेश (तरो-ताजा) रहेंगे, तब आपको भी महसूस होगा कि दादाजी ने हमें फ्रेश बनाया।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, उम्र तो हो गई है आपकी, फिर भी...

दादाश्री : फिर भी! उम्र तो इस देह की हुई है न, हमारी कहाँ उम्र होनेवाली है? और दूसरा क्या होता है कि आप सभी को सायकोलॉजिकल इफेक्ट होता है। हमें किसी प्रकार का ऐसा सायकोलॉजिकल इफेक्ट नहीं होता कि 'मुझे बुखार आया है।' किसी के पूछने पर मुँह से ऐसा कहेंगे, पर बाद में फिर उसे मिटा देते हैं। इतनी हमारी जागृति होती है।

'मैं' 'खुद' में और 'पटेल' जगत कल्याण की विधि में

बहुधा 'मैं' मूल स्वरूप में रहता हूँ, माने पड़ोसी के तौर पर रहता हूँ। और थोड़े से ही टाईम के लिए इसमें से (स्वरूप में से) बाहर आता हूँ। मूल स्वरूप में रहने के कारण फिर फ्रेशनेस ज्यों की त्यों बनी रहेगी। रात में भी ज्यादातर सोया ही नहीं हूँ। पाव घंटा जरा झपकी आ जाएँ उतना ही, दो वक्त मिलाकर पाव घंटा, बाकी तो केवल आँखे मुँदी हुई होती हैं। इन कानों से ज़रा कम सुनाई देता है ताकि लोग समझें कि दादाजी को नींद लग गई है और मैं भी समझूं कि जो समझते हैं ठीक है। मुझे विधियाँ करनी होती हैं, इसलिए मैं खुद में और ए.एम.पटेल विधियों में होते हैं। अर्थात् इस संसार का कल्याण कैसे हो, उसकी सारी विधियाँ किया करें। माने वे निरंतर विधिरत होते हैं, दिन को भी और रात को भी विधिरत होते हैं।

प्रकृति को ऐसे मोड़े ज्ञानी

बाकी लोग तो ऐसा ही समझें कि दादाजी अपने कमरे में जाकर सो जाते हैं। मगर इस बात में कोई तथ्य नहीं है। पद्मासन लगाकर घंटे भर बैठता हूँ, वह भी इस सतहत्तर साल की उम्र में पद्मासन लगाकर बैठना आसान है क्या? पैर भी मोड़ सकता हूँ और उसी की वजह से आँखों की शक्ति, आँखो की रोशनी सब कुछ सुरक्षित रहा है।

जो सुख मैंने पाया, वही जग पायें

मैं कहा करता हूँ न कि भैया मैं तो सत्ताईस सालों से (१९५८ में आत्मज्ञान होने के बाद) मुक्त ही हूँ, बिना किसी टेन्शन के। अर्थात् टेन्शन हुआ करता था ए.एम.पटेल को, मुझे थोड़े ही कुछ होता था? पर ए.एम.पटेल को भी जब तक टेन्शन रहता है, तब तक हमारे लिए बोझ ही है न! वह जब पूरा होगा तब हम समझें कि हम मुक्त हुए और फिर भी जब तक यह शरीर है वहाँ तक बंधन है। लेकिन अब उसके लिए हमें कोई आपति नहीं है। दो अवतार ज्यादा होने पर भी हमें आपत्ति नहीं है। हमारा लक्ष्य क्या है कि, 'यह जो सुख मैंने पाया है वही सुख सारी दुनिया को मिले।' और आपको क्या जल्दी है यह बताइये। आपको वहाँ पहुँचने की जल्दी है क्या?

दादाई ब्लैन्क चेक

यह 'दादाजी' एक ऐसा निमित्त है, जैसे कि 'दादाजी' का नाम देने पर यदि बिस्तर में बिमार पड़े हो, बिछौने में हिलना-डुलना नहीं होता हो फिर भी खड़े हो सकते हैं। इसलिए अपना काम बना लीजिए। आप जो काम करना चाहें वह हो सके ऐसा है। माने निमित्त है ऐसा। मगर उसमें बुरी नियत मत रखना। किसी के यहाँ शादी में जाने के लिए शरीर खड़ा हो जाए (तबीयत अच्छी हो जाए), ऐसा मत माँगना। यहाँ सत्संग में आने के लिए शरीर खड़ा हो ऐसा माँगना। मतलब कि 'दादाजी' का सदुपयोग करना, उनका दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। क्योंकि यदि दुरुपयोग नहीं किया तो 'दादाजी' दोबारा मुसीबत के वक्त काम आयेंगे। इसलिए हम उन्हें यों ही फ़जूल काम में नहीं लाएँ।

अर्थात् यह दादाजी का तो ब्लैन्क चेक, कोरा चेक कहलाये। वह बार-बार मुनाफे के लिए उपयोग में लेने जैसा नहीं है। भारी मुसीबत आने पर जंजीर खींचना। सीगरेट का पाकिट गिर गया हो और हम रेल की जंजीर खींचेंगे तो दंड होगा कि नहीं होगा? माने ऐसा दुरुपयोग मत करना।

अपनापन सौंप दिया

देखिये, मैं आपको बता दूँ। मेरा तो यह खोजते-खोजते लम्बा अरसा गुजर चुका है। इसलिए आपको तो मैं आसान-सी राह दिखाता हूँ। मुझे तो राहें ढूँढनी पड़ी थीं। आपको मैं जिस राह गया था वही राह दिखा रहा हूँ, ताले खोलने की चाबी दे देता हूँ।

यह 'ए.एम.पटेल' जो हैं न, उन्होंने खुद का अपनापन भगवान को समर्पित कर दिया है। इसलिए भगवान उसे हर तरह से सम्हाल लेते हैं। और ऐसा सम्हालते हैं न, सही मानों में! पर कब से सम्हालते हैं? जब से खुद का अपनापन गया तब से, अहंकार जाने के बाद। बाकी, अहंकार जाना मुश्किल है।

इसलिए हमें वहाँ मुंबई या बडौदा में कुछ लोग कहते हैं कि, 'दादाजी, आप पहले मिले होते तो बेहतर था।' इस पर मैं कहता हूँ, 'गठरी के तौर पर मुझे उठा लाते हैं तब यहाँ आना होता है और गठरी के माफिक उठा ले जाते हैं तब जाता हूँ।' ऐसा करने पर वे समझ जाते हैं। फिर भी कहते हैं, 'गठरी की माफिक क्यों कहते हैं?' अरे, यह गठरी ही है न, गठरी नहीं तो और क्या है? भीतर पूर्ण रूप से भगवान है, पर बाहर तो गठरी ही है न! अर्थात् अपनापन नहीं रहा है।

महात्मा सभी, एक दिन भगवान होकर रहेंगे

प्रश्नकर्ता : आपने जो बताया कि, हम सबको आप भगवान बनाना चाहते हैं, वह तो जब होंगे तब होंगे पर आज तो नहीं हुए हैं न?

दादाश्री : पर वे होंगे न! क्योंकि यह अक्रम विज्ञान है। जो बनानेवाला है वह निमित्त है और जिसे बनने की इच्छा है वे दोंनो जब आ मिलेंगे, तब होकर ही रहेंगे। बनानेवाला क्लियर(स्पष्ट) है और हमारा क्लियर है, हमारी और कोई वृत्ति नहीं है। इसलिए एक दिन सारे अंतराय दूर हो जायेंगे और भगवान होकर रहेगा, जो हमारा मूल स्वरूप ही है।

जय सच्चिदानंद

प्रात:विधि

* श्री सीमंधर स्वामी को नमस्कार ।
* वात्सल्यमूर्ति श्री दादा भगवान को नमस्कार ।
* प्राप्त मन-वचन-काया से इस जग के कोई भी जीव को किंचित्‌मात्र भी दु:ख न हो, न हो, न हो।
* केवल शुद्धात्मानुभव के सिवा इस जग की कोई भी विनाशी चीज मुझे नहीं चाहिए।
* प्रगट ज्ञानी पुरुष 'दादा भगवान' की आज्ञा में ही सदा रहने की परम शक्ति प्राप्त हो, प्राप्त हो, प्राप्त हो।
* ज्ञानी पुरुष दादा भगवान के वीतराग विज्ञान का यथार्थता से, संपूर्ण रूप से, सर्वांग रूप से केवल ज्ञान, केवल दर्शन और केवल चारित्र्य में परिणमन हो, परिणमन हो, परिणमन हो।

नमस्कार विधि

* प्रत्यक्ष दादा भगवान की साक्षी में वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में विचरते, तीर्थंकर भगवान श्री सीमंधर स्वामी को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (४०)
* प्रत्यक्ष दादा भगवानकी साक्षी में वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र और अन्य क्षेत्रो में विचरते 'ॐ परमेष्टि भगवंतो' को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (५)
* प्रत्यक्ष दादा भगवान की साक्षी में वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र और अन्य क्षेत्रों में विचरते 'पंच परमेष्टि भगवंतो' को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (५)
* प्रत्यक्ष दादा भगवान की साक्षी में वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र और अन्य क्षेत्रो में विहरमान 'तीर्थंकर साहिबों' को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (५)
* वीतराग शासन देव-देवीयों को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (५)
* निष्पक्षपाती शासन देव-देवीयों को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (५)
* चौबीस तीर्थंकर भगवंतो को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (५)
* 'श्री कृष्ण भगवान' को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (५)
* भरत क्षेत्र में हाल विचरते सर्वज्ञ 'श्री दादा भगवान' को निश्चय से अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (५)
* 'दादा भगवान' के सभी समकितधारी महात्माओं को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कर करता हूँ। (५)
* सारे ब्रह्मांड के जीवमात्र के 'रीयल' स्वरूप को अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। (५)
* 'रियल' स्वरूप वही भगवद् स्वरूप है। इसीलिए सारे जग को 'भगवद् स्वरूप' में दर्शन करता हूँ। (५)
* 'रियल' स्वरूप वही शुद्धात्मा स्वरूप है। इसीलिए सारे जग को 'शुद्धात्मा स्वरूप' में दर्शन करता हूँ। (५)
* 'रियल' स्वरूप वही तत्त्व स्वरूप है। इसीलिए सारे जग को 'तत्त्वज्ञान' से दर्शन करता हूँ। (५)

(वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी को परम पूजनीय श्री दादा भगवान के माध्यम द्वारा प्रत्यक्ष नमस्कार पहूँचते है। कौसमें लिखी संख्या के अनुसार प्रतिदिन एक बार पढें।)

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

१. ज्ञानी पुरूष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का विज्ञान
४. आत्मबोध
५. मैं कौन हूँ ?
६. वर्तमान तीर्थकर श्री सीमंधर स्वामी
७. भूगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. प्रतिक्रमण
१४. दादा भगवान कौन ?
१५. पैसों का व्यवहार

English

1. **Adjust Everywhere**
2. **The Fault of the Sufferer**
3. **Whatever has happened is Justice**
4. **Avoid Clashes**
5. **Anger**
6. **Worries**
7. **The Essence of All Religion**
8. **Shree Simandhar Swami**
9. **Pure Love**
10. **Death : Before, During & After...**
11. **Gnani Purush Shri A.M.Patel**
12. **Who Am I ?**
13. **The Science of Karma**
14. **Ahimsa (Non-violence)**
15. **Money**
16. **Celibacy : Brahmcharya**
17. **Harmony in Marriage**
18. **Pratikraman**
19. **Flawless Vision**
20. **Generation Gap**
21. **Apatvani-1**
22. **Noble Use of Money**
23. **Life Without Conflict**
24. **Spirituality in Speech**
25. **Trimantra**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी बहुत सारी पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में दादावाणी मेगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

प्राप्तिस्थान

दादा भगवान परिवार

अडालज : त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सीटी, अहमदाबाद- कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि. गांधीनगर, गुजरात - ३८२४२१.
फोन : (०७९) ३९८३ ०१००
E-mail : info@dadabhagwan.org

अहमदाबाद : दादा दर्शन, ५, ममतापार्क सोसायटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८००१४.
फोन : (०७९)२७५४०४०८, २७५४३९७९

राजकोट : त्रिमंदिर, अहमदाबाद-राजकोट हाई वे, तरघडीया चोकडी, पोस्ट : मालियासण, जी. राजकोट. फोन : ९९२४३ ४३४१६

मुंबई : श्री मेघेश छेडा, फोन : (०२२) २४१३७६१६, २४११३८७५

बेंग्लोर : श्री अशोक जैन, ९३४१९४८५०९

कोलकत्ता : श्री शशीकांत कामदार, ०३३-३२९३३८८५

U.S.A. : **Dada Bhagwan Vignan Institue : Dr. Bachu Amin,**
100, SW Redbud Lane, Topeka, Kansas 66606.
Tel : 785-271-0869, **E-mail :** bamin@cox.net
Dr. Shirish Patel, 2659, Raven Circle, Corona, CA 92882
Tel. : 951-734-4715, **E-mail :** shirishpatel@sbcglobal.net

U.K. : **Dada Centre**, 236, Kingsbury Road,
(Above Kingsbury Printers), Kingsbury, London, NW9 0BH
Tel. : 07956476253, E-mail: dadabhagwan_uk@yahoo.com

Canada : **Dinesh Patel,** 4, Halesia Drive, Etobicock,
Toronto, M9W 6B7. Tel. : 416 675 3543
E-mail: ashadinsha@yahoo.ca

Website : www.dadabhagwan.org, www.dadashri.org